काव्यांजलि

मेरी प्रिय रचनाएँ



नीरज

काव्यांजलि

काव्यांजलि
मेरी प्रिय रचनाएँ

गीत ॠषि 'निरज' के प्रिय गीतों का संकलन

नीरज

MANJUL
मंजुल पब्लिशिंग हाउस

First published in India by

Manjul Publishing House
Corporate and Editorial Office
• 2nd Floor, Usha Preet Complex, 42 Malviya Nagar, Bhopal 462 003 - India
Sales and Marketing Office
• 7/32, Ground Floor, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi 110 002 - India
Website: www.manjulindia.com
Distribution Centres
Ahmedabad, Bengaluru, Bhopal, Kolkata, Chennai, Hyderabad, Mumbai, New Delhi, Pune

This edition first published in 2013
Second impression 2016

ISBN 978-81-8322-390-4

सरलता और सत्यता के प्रतीक
मेरे परम मित्र सन्त पुरुष श्री शिवपाल सिंह यादव
को
सादर सप्रेम समर्पित

अनुक्रमणिका

अपनी बात...

जनकपुरी, अलीगढ़
जुलाई/22/2013

लोगों ने मुझसे पूछा है कि मैंने जिन कविताओं को अपनी प्रिय कविताएं बताया है उसका कारण क्या है? इस सम्बन्ध में मुझे कहना है कि वैसे तो सारी कविताएं मेरी सन्तानों की तरह हैं और सभी प्रिय हैं, लेकिन कुछ कविताएं विशिष्ट है जिन्हें मेरे साथ-साथ मेरे श्रोताओं और पाठकों ने भी पसंद किया है और जिनके कारण मुझे लोकप्रियता भी प्राप्त हुई है।

'कारवाँ गुज़र गया ग़ुबार देखते रहे' एक समय था जब वह मेरा सर्वाधिक प्रिय गीत था जिसके कारण मुझे विश्वव्यापी लोकप्रियता प्राप्त हुई थी क्योंकि 'कारवाँ गुज़र गया' नामक ये फ़्रेज़ हिन्दी और उर्दू दोनों भाषा भाषियों ने पहली बार सुना था और इसे मैंने 1954 में पहली बार लखनऊ रेडियो स्टेशन से पढ़ा था। और यह रात भर में ही हिन्दुस्तान में ही नहीं पाकिस्तान में भी लोकप्रिय हो गया था, क्योंकि ऐसा फ़्रेज़ मेरे पहले न तो हिन्दी और न उर्दू वालों ने प्रयोग किया था। इसी गीत की लोकप्रियता को भुनाने के लिए श्री आर. चन्द्रा ने 'नई उमर की नई फ़सल' नामक फ़िल्म बनाई थी और जब रफ़ी ने गीत गाया था तो ये गीत हिन्दुस्तान की सरहदें लाँघकर सारे विश्व में प्रसारित हो गया और मैं जहाँ-जहाँ इंग्लैण्ड, अमेरिका, कैनेडा, ऑस्ट्रेलिया, मॉरीशस में गया तो वहाँ ये मेरा सिग्नेचर गीत बन गया, जिस प्रकार से बच्चन जी की 'मधुशाला'...

लेकिन इसके बाद और भी अनेक गीत और कविताएं हैं, जो मेरी प्रिय कविताओं की श्रेणी में आते हैं। क्योंकि किसी गीत में तो वसुधैव कुटुम्बकम की भावना निहित है जैसे—

कोई नहीं पराया मेरा घर सारा संसार है।
और इसकी अंतिम पंक्ति,
फूल डाल का पीछे पहले उपवन का शृंगार है।

में समाजवादी दर्शन की व्याख्या है।

कुछ कविताएं ऐसी भी हैं जिनमें कि गीता और उपनिषद आदि का जीवन दर्शन है और जो हारे-थके मनुष्य को चलने की और आगे बढ़ने की प्रेरणा देती हैं जैसे—

कुछ सपनों के मर जाने से / जीवन नहीं मरा करता है।

या फिर,

जिन मुश्किलों में मुस्कुराना हो मना
उन मुश्किलों में मुस्कुराना धर्म है।।

यही नहीं, अनेक कविताएं ऐसी हैं जिनमें मानवतावादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति है।

मेरी अनेक कविताओं में नए प्रतीक, नए बिंब और नई कथन शैली है। मेरी कुछ पातियाँ, जैसे कानपुर के नाम नीरज की पाती, इसमें कानपुर नगर का वस्तुवादी चित्रण है और साथ ही मैंने वहाँ जो कुछ भोगा उसका भी ज़िक्र है। पाकिस्तान के नाम जो पाती है उसमें पाकिस्तान की नफ़रत का उत्तर प्रेम से दिया गया है।

दो हुए तो क्या मगर हम एक ही घर के सहन हैं।
एक ही लौ के दिए हैं एक ही दिन की किरन हैं।
श्लोक के संग आयतें पढ़ती हमारी तख्तियाँ हैं।
और होली ईद आपस में अभिन्न सहेलियाँ है।
भेद से आगे खड़े हम फ़र्क से अनजान हैं हम
प्यार है मज़हब हमारा और बस इंसान हैं हम।।

'गीतकार का जन्म' नामक गीत दिनकर जी की कविता 'गीतकार की मृत्यु' के उत्तर में लिखी गई थी जो गीतकार की अस्मिता बन गई है—

"जो लौह पुरुष है खड़ा हाथ में लिए वज्र,
वह और नहीं कोई, विनाश का सहचर है।
होने वाली है सफल स्वर्ग की कूटनीति,
विज्ञान कला से यदि न डालता भाँवर है।।"

इस कविता के अन्त में विज्ञान और कला के समन्वय की बात कही गई है जो वर्तमान की ज़रूरत है।

दोहों में,

"आत्मा के सौन्दर्य का, शब्द रूप है काव्य।
मानव होना भाग्य है, कवि होना सौभाग्य।।"

यह दोहा कवि और कविता के महत्त्व को व्यक्त करता है। ये दोहा कवियों के लिए सूत्रवाक्य बन गया और कवि की अस्मिता को व्यक्त करता है।

यहाँ समयाभाव के कारण हर कविता की व्याख्या करना सम्भव नहीं है, लेकिन इतना ज़रूर कहना चाहूँगा कि मेरी जो प्रिय कविताएं रही हैं उनमें जीवन जगत के भिन्न-भिन्न पक्षों की बात बहुत सहज सरल शैली व नए प्रतीकों, नए बिबों के माध्यम से कही गई है। जिनमें

बौद्ध दर्शन, गीत दर्शन, सूफ़ी दर्शन, समाजवादी व मानवतावादी दृष्टिकोण प्राप्त होगा और साथ ही साथ मेरे गीतों के मूल तत्त्व प्रेम और करूणा भी आप तक पहुँचेंगे।

—नीरज

भूमिका

‘नीरज’ का नाम मैंने सबसे पहले आज से लगभग 46 वर्ष पूर्व दिल्ली में सुना था। घटना शायद 1945 के मार्च मास की है। उन दिनों पंजाब सरकार ने बयालीस के आंदोलन के सिलसिले में मुझे लगभग डेढ़ वर्ष तक फ़िरोज़पुर जेल में नज़रबन्द रखने के बाद 24 घण्टे का नोटिस देकर पंजाब से निकाल दिया था और मैं यू.पी. सरकार द्वारा अपनी जन्मभूमि बाबूगढ़ (मेरठ) में नज़रबन्दी के दिन काट रहा था। मेरी वास्तविक हालत जानने के लिए बम्बई के वर्तमान राज्यपाल महामहिम श्रीप्रकाश ने मुझे दिल्ली बुलाया था, जो उन दिनों सेण्ट्रल असेम्बली के प्रभावशाली कांग्रेसी सदस्य थे और कैनिंग लेन में रहते थे। रात के लगभग 8 बजे जब मैं कैनिंग लेन से दिल्ली जंक्शन लौटते हुए फ़व्वारा से होकर गुज़रा, तो मेरे कानों में मधुर स्वर-लहरी से युक्त ये पंक्तियाँ पड़ीं:

मैं विद्रोही हूँ, जग मैं विद्रोह कराने आया हूँ,
क्रान्ति क्रान्ति का सरल सुनहरा राग सुनाने आया हूँ

सुनते ही बरबस मेरे पैर रुक गए। देखा, गांधी ग्राउण्ड में कवि-सम्मेलन हो रहा है। यद्यपि उस दिन मैं गाँव से पुलिस की आँखों में धूल झोंककर चुपचाप चला आया था और रात में ही मेरा घर पर पहुँचना ज़रूरी था, किन्तु उक्त पंक्तियाँ मुझे इतनी मोहक और प्रेरक लगीं कि ख़ुद-ब-ख़ुद मेरे पैर स्टेशन की बजाय गांधी ग्राउण्ड की ओर बढ़ गए। मेरी स्थिति उस समय ठीक वैसी ही हो रही थी, जैसे तबले पर थाप पड़ते ही एक नर्तक के पैर स्वतः ही थिरकने लगते हैं, या इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि मेरा मन उस स्वर-लहरी को सुनकर इस प्रकार मचल रहा था, जैसे रणभेरी बजाने पर योद्धा का हाथ स्वतः ही तलवार की मूठ पर जा पहुँचता है।

यद्यपि उन दिनों मुझ पर भाषण और लेखन, यहाँ तक कि श्रवण की भी पूरी पाबन्दी थी, और मैं अपनी नज़रबन्दी के नियम का उल्लंघन करके चुपचाप दिल्ली आया था, किन्तु ज्यों-ज्यों इस कविता की पंक्तियाँ आगे चलती गईं, मेरे कदम भी पण्डाल की ओर बढ़ते गए। वह कविता समाप्त हुई और दूसरी की फ़रमाइश जनता तथा मंच दोनों की ओर से हुई। सभा में पूर्ण शान्ति थी और सभी का ध्यान उस तरुण की ओर लगा था, जिसने अभी वह कविता सुनाई थी। जनता के आग्रह पर कवि ने यह दूसरी कविता सुनाई:

मधु पीते-पीते थके अधर

फिर भी प्यासे अरमान

...   .

जीवन पाया, पर जीवन में
क्या दो क्षण सुख के बीत सके?
मन छलने वाले मिले बहुत
पर क्या मिल मन के मीत सके!
यह रेगिस्तानी प्यास मिली
मधु पाकर और मचलती है,
यह ठंडी मीठी आग मिली
जो जीवन पीकर जलती है।
सब कुछ ही मिला मगर
न मिले प्याले में डूबे प्राण!
फिर भी प्यासे अरमान!

कविता क्या थी, ऐसा लग रहा था मानो नशे की मादक चादर कवि ने सारे जन-समुदाय पर डाल दी हो। जनता प्रस्तर-प्रतिमात् मूक भाव से कवि को सुन रही थी। मैं घर वापस लौटने की बात भूलकर मंत्र-मुग्ध-सा पाण्डाल के एक कोने में चुपचाप खड़ा कविता का आनन्द ले ही रहा था कि अचानक किसी ने कन्धे पर हाथ रखकर मुझे पीछे से झकझोरा। देखा, 'शेष' जी पीछे खड़े मुस्करा रहे हैं। उन्होंने मुझसे मंच पर चलकर बैठने का आग्रह किया और मैंने चुपचाप अपनी सब परिस्थिति समझाकर क्षमा माँग ली। हाँ, उन्हीं से मैंने इस कवि का नाम पूछा। उन्होंने बताया-गोपालदास सक्सेना 'नीरज'।

यही गोपालदास सक्सेना 'नीरज' बाद में केवल 'नीरज' हो गया; और आज तो स्थिति यह है कि 'नीरज' का नाम आते ही हिन्द-गीतकारों की एक पूरी की पूरी पीढ़ी ही आँखों की राह दिल में उतर जाती है। 'नीरज' आज एक व्यक्ति न रहकर पिछली अर्ध शताब्दी के पूरे गीतकाव्य की शृंगार-निधि ही हो गया है। दिल्ली का यही कवि-सम्मेलन था, जिसने 'नीरज' नाम से मुझे परिचित कराया। इसके बाद तो अनेक बार 'नीरज' मुझे मिला। मेरे मन में 'नीरज' की प्रतिष्ठा एक कवि के रूप में, एक गीतकार के रूप में दिनानुदिन अधिकाधिक ही हुई है। अब उसके साथ मेरे ऐसे सम्बन्ध हो गए हैं कि उसका सारा व्यक्तित्व ही मेरे निकट घरेलू-सा हो गया है।

'नीरज' का हिन्दी-काव्य-गगन पर सहसा शुक्र तारे की तरह उदित होना उन दिनों एक अद्भुद और आकस्मिक घटना थी। पहले 'नीरज' का नाम कभी कहीं जाना सुना भी न था। किसे मालूम था कि सरकार के सप्लाई-विभाग का एक क्लर्क यह बीस वर्षीय तरुण किसी दिन हिन्दी-गीत-काव्य का शृंगार बनेगा। धीरे-धीरे 'नीरज' का नाम हिन्दी-काव्य के क्षितिज से उठकर आकाश की ओर आने लगा और बात यहाँ तक पहुँची कि उसके कुछ साथियों को उसका यह उत्कर्ष फूटी आँखों तनिक भी न सुहाया। उन दिनों उसका खूब विरोध हुआ।

लेकिन मैंने देखा कि इस विरोध का भी 'नीरज' के उठान पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ा, और वह देखते-देखते उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच गया। यह समय था, जब देश में कवि-सम्मेलनों की धूम मची थी। 1942 की क्रान्ति के बाद देश की राजनीतिक चेतना अँगड़ाई ले रही थी। बंगाल के अकाल, आज़ाद हिन्द फ़ौज के प्रमुख अफ़सरों पर चलने वाले मुकदमे और नाविक-विद्रोह जैसी घटनाओं से देश की तरुणाई में एक अजीब जोश और अद्भुत उत्साह नज़र आता था। हमारे कवि भी इस परिस्थितिजन्य वैचारिक क्रान्ति से कैसे अछूते रह सकते थे। विभाजन से पूर्व उन दिनों देश का ऐसा कोई प्रमुख नगर नहीं बचा था, जहाँ कवि-सम्मेलन आयोजित न हुए हो; और ऐसा कोई कवि-सम्मेलन रहा था, जिसमें 'नीरज' को न बुलाया गया हो। 'नीरज' की स्वर-लहरी दिल्ली की सीमा का अतिक्रमण करके थोड़े ही समय में समग्र देश और अखिल हिन्दी-जगत् का गौरव बन गई। यों कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी कि कवि-सम्मेलनों को जो लोकप्रियता किसी समय 'बच्चन' द्वारा मिली थी, उसमें 'नीरज' ने चार चाँद लगा दिए। यहाँ तक कि उसे 'कवि सम्मेलनों का राजा' तक कहा जाने लगा। जिस कवि-सम्मेलन में 'नीरज' न पहुँचता, वह मानो फीका-फीका-सा लगता।

अब तो स्थिति यह है कि 'नीरज' हिन्दी की 'तरुण' पीढ़ी का एक ऐसा तेजस्वी और सशक्त कलाकार है, जिस पर हिन्दी ही क्या, किसी भी भाषा के साहित्य को गर्व हो सकता है। उसकी रचनाओं में जहाँ मानव के संवेदनशील हृदय की सरस, सरल अनुभूति के दर्शन होते हैं वहाँ संसार की क्षण-भंगुरता के प्रति भी स्पष्ट किन्तु सबल संकेत मिलता है। उसकी विद्रोहमयी वाणी में युग-युग से तड़पती, कसकती मानवता की जो करुण-सजल पुकार देखने-सुनने को मिलती है, वह हमारे राष्ट्र की नवीन पीढ़ी के लिए अनुकरणीय-मननीय है। संक्षेप में 'नीरज' हिन्दी-गीत-काव्य की शृंगार-निधि ही नहीं, प्रत्युत अनेक रूढ़ियों से आक्रान्त हमारे समाज तथा विकासोन्मुख राष्ट्र का गौरव-मुकुट प्रहरी है। साहित्य तथा समाज का कोई भी ऐसा अंग नहीं बचा, जिसे उसने अपनी प्रतिभा के परस से जीवन-दान न दिया। उसकी प्यार की पुकार में यदि सारे भारत की तरुणाई की प्रतिच्छाया है, तो विद्रोह की हुंकार में कसमसाते हुए यौवन की सुखद और सरस अभिव्यक्ति भी।

'नीरज' के काव्य-विकास को जानने-समझने से पूर्व, आइए, उसके पारिवारिक जीवन और साहित्यिक विकास पर भी थोड़-सा विचार कर लें। 'नीरज' का जन्म 4 जनवरी, 1925 को उत्तर प्रदेश के इटावा ज़िले के पुरावली नामक ग्राम में एक साधारण कायस्थ-परिवार में हुआ था। जब वह 6 वर्ष का अबोध बालक ही था कि अचानक उसके पिता बाबू ब्रजकिशोर स्वर्ग सिधार गए और वह पिता के स्नेह से वंचित हो गया। बाबू ब्रजकिशोर ने देहावसान से पूर्व अपनी ज़मींदारी आदि बेच-बाचकर खानपुर स्टेट में नौकरी कर ली थी। पैतृक सम्पत्ति के नाम पर उसके परिवार के भरण-पोषण के लिए कुछ भी नहीं बचा था। परिणामस्वरूप वह अपने फूफा बाबू हरदयालप्रसाद वकील के पास एटा चला गया और वहाँ उसने माँ के स्नेहाचल से दूर रहकर लगभग 11 वर्ष तक अथक जीवन-संघर्ष किया। जीवन-यापन के साधन सुलभ करने की चिन्ता में उसके अध्ययन का क्रम भी प्रारम्भ में अवरुद्ध-सा हो गया था, किन्तु फिर भी उसने हिम्मत न हारी और कड़ी मेहनत तथा जी-तोड़ कोशिशों के बाद

अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में सन् 1942 में एटा से हाई स्कूल की परीक्षा ससम्मान प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। हाई स्कूल करने के बाद परिवार के भरण-पोषण की चिन्ता एवं छोटे भाइयों की शिक्षा देने के साधन जुटाने की कोशिश ने उसे चुप नहीं बैठने दिया और उसने इटावा की कचहरी में टाइप करने का काम प्रारम्भ कर दिया। दुर्भाग्य ने यहाँ भी साथ नहीं छोड़ा। अभी वह उधार की मशीन पर टाइप करके अपने परिवार को ठीक तरह से जमाने भी न पाया था कि अचानक उसका यह काम बन्द हो गया। परिणामस्वरूप कुछ दिन तक उसने जीवन-यापन के लिए सिनेमाघर की एक दुकान तक पर काम किया।

उसके जीवन-संघर्ष की कहानी यहीं तक समाप्त नहीं हुई। वह नौकरी की खोज में रात-दिन परेशान रहने लगा और इसी चक्कर में 1942 के नवम्बर में वह दिल्ली आया और यहाँ सरकार के सप्लाई-विभाग में ‘टाइपिस्ट’ लग गया। इस स्थान पर उसने 67 रुपये मासिक पर लगभग दो वर्ष तक कार्य किया। उन दिनों उसे अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ा। 67 रुपये में से 35-40 रुपये वह घर भेज देता था और शेषांश में कठिनाई से ही गुज़ारा चलता था। बचत करने की दृष्टि से वह केवल दोपहर को एक समय ही बाज़ार की पूरी इसलिए खाता था जिससे वे देर में हज़म हों और भूख जल्दी न लगे। इसका दुष्परिणाम उसे आज तक भोगना पड़ रहा है और वह 1944 से ‘कोलाइटिस’ तथा ‘लिवर’ की बीमारी का शिकार है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उन्हीं दिनों वह निरन्तर 9 माह तक बुखार आने पर भी अपना इलाज कराने के लिए दफ़्तर से छुट्टी न ले सका और न पैसे के अभाव में भलीभाँति इलाज ही करा सका। अपने दिल्ली-प्रवास में ‘नीरज’ कुछ दिन तक नई दिल्ली के पंचकुइयाँ प्लेस पर रहकर बाद में शाहदरा के मोहल्ला महाराम में आ गया था। जब शाहदरा में (1945) था तब उसके मकान पर हिन्दी के युग-प्रवर्तक कवि श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’ और प्रख्यात आलोचक श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी भी ठहरे थे। मुझे भी शाहदरा में उन दिनों नीरज का आतिथ्य-लाभ प्राप्त करने का सुअवसर मिला था। आरम्भ की पंक्तियों में मैंने जिस कवि-सम्मेलन का उल्लेख किया है, यह श्री ‘निराला’ जी की ही अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था और उन्हीं दिनों वे ‘नीरज’ के निवास पर शाहदरा पधारे थे। दिल्ली में कुछ दिन तक ‘नीरज’ ‘सांग्स पब्लिसिटी ऑफ़िस’ में लिटरेरी असिस्टेंट भी रहा। और वहाँ से, सरकार के प्रचार के बजाय, कांग्रेस एवं राष्ट्रीयता का प्रचार करने के कारण उसे त्यागपत्र देना पड़ा।

अपने बड़े परिवार के निर्वाह के लिए की गई इन नौकरियों में भी उसने अध्ययन का क्रम जारी रखा। दिल्ली की नौकरी छूट जाने पर सन् 1946 में वह कानपुर चला गया और कुछ दिन तक वहाँ के डी.ए.वी. कॉलेज में क्लर्क रहा। उन्हीं दिनों उसका विवाह भी हो गया। विवाह के उपरान्त उसे ‘वाल्कर्ट ब्रदर्स’ नामक एक विदेशी कम्पनी में ‘स्टेनो टाइपिस्ट’ का कार्य मिल गया और उसने इस कम्पनी में जमकर 5 वर्ष तक काम किया। ‘वाल्कर्ट ब्रदर्स’ में जाकर उसके जीवन में कुछ स्थायित्व आया और उसने अपने अध्ययन की शृंखला को आगे बढ़ाया। यदि यहाँ पर मैं यह उल्लेख न करूँ कि ‘फ़रहत’ कानपुरी के कारण ‘नीरज’ कानपुर में जमा और उनके ही प्रभाव वे उसे डी.ए.वी. कॉलेज में नौकरी मिली, तो भारी भूल

होगी। श्री ‘फ़रहत’ के छोटे भाई मायाप्रकाश निगम ‘नीरज’ के दोस्त बन गए थे। उनके प्रयत्न ने ही ‘नीरज’ को ‘वाल्कर्ट ब्रदर्स’ की नौकरी दिलाई थी। जिन दिनों ‘नीरज’ कानपुर में रहा, उन दिनों पहले यह कुरसवाँ मोहल्ले में रहता था, जो कानपुर का अब बहुत ही प्रसिद्ध मोहल्ला है। बाद में यह नेहरू नगर रहने लगा था।

इसी बीच उसने सन् 1949 में इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की। तदुपरान्त ‘वाल्कर्ट बद्रर्स’ के अतिरिक्त एक अन्य स्थानीय फ़र्म में पार्ट-टाइम काम करते हुए सन् 1951 में बी.ए. किया। इसी बीच 1 जून, 1951 को उसे पुत्र लाभ हुआ; जिसका नाम ‘मिलन प्रभाव गुंजन’ है। कुछ दिन तक वह कानपुर में ‘ज़िला सूचना-अधिकारी’ भी रहा। अपने अध्ययन में बाधा आने के कारण उसने साल-भर बाद वह नौकरी छोड़ दी। परिणामस्वरूप 1953 में एम.ए. की परीक्षा भी उसने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। एम.ए. करने के उपरान्त वह दो वर्ष तक पूर्णतया बेकार रहा। किन्तु यह बेकारी उसके लिए एक प्रकार से वरदान सिद्ध हुई; क्योंकि इन दो वर्षों में उसने सारे देश का भ्रमण किया और कवि-सम्मेलनों के माध्यम से बहुत लोकप्रियता प्राप्त की। ‘नीरज’ ने इन दो वर्षों में जहाँ अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त की, वहाँ उसने निरन्तर यात्राओं में लगे रहने के कारण अपने स्वास्थ्य को बिल्कुल चौपट कर दिया।

फिर 1955 में एक वर्ष तक वह मेरठ कॉलेज में प्राध्यापक रहा। यहाँ यह लिख देना भी कदाचित् अप्रासंगिक न होगा कि मेरठ कॉलेज में अधिक दिन तक वह क्यों न टिक सका। कॉलेज के अधिकारियों ने उस पर कुछ ऐसे आरोप लगाए, जो बाद में असत्य प्रमाणित हुए। परिणामस्वरूप उसे वहाँ पर फिर नियुक्त किया गया, किन्तु उसने अपने स्वाभिमान और गौरव की रक्षा के लिए फिर वहाँ आना उचित न समझा।

‘नीरज’ का कवि-जीवन विधिवत् मई, 1942 से प्रारम्भ होता है। जब वह हाई स्कूल में ही पढ़ता था तो उसका वहाँ पर किसी लड़की से प्रणय-सम्बन्ध हो गया। दुर्भाग्यवश अचानक उसका विछोह हो गया। अपनी प्रेयसी के बिछोह को यह सहन न कर सका और उसके कवि-मानस से यों ही सहसा ये पंक्तियाँ निकल पड़ीः

कितना एकाकी मम जीवन,
किसी पेड़ पर यदि कोई पक्षी का जोड़ा बैठा होता,
तो न उसे भी आँखें भरकर मैं इस डर से देखा करता,
कहीं नज़र लग जाय न इनको।

और इस प्रकार प्रणयी युवक गोपालदास सक्सेना कवि होकर गोपालदास सक्सेना ‘नीरज’ हो गया। पहले-पहल ‘नीरज’ को हिन्दी के प्रख्यात लोकप्रिय कवि श्री हरिवंशराय ‘बच्चन’ का ‘निशा निमन्त्रण’ कहीं से पढ़ने को मिल गया था। उससे वह बहुत प्रभावित हुआ था। इस सम्बन्ध में ‘नीरज’ ने स्वयं लिखा हैः

“मैंने कविता लिखना किसी से सीखा, यह तो मुझे याद नहीं। कब लिखना आरम्भ

किया, शायद यह भी नहीं मालूम। हाँ, इतना ज़रूर याद है कि गर्मी के दिन थे, स्कूल की छुट्टियाँ हो चुकी थीं, शायद मई का या जून का महीना था। मेरे एक मित्र मेरे घर आए। उनके हाथ में ‘निशा निमन्त्रण’ पुस्तक की एक प्रति थी। मैंने उसे खोला। उसके पहले गीत ने ही मुझे प्रभावित किया और पढ़ने के लिए उनसे उसे माँग लिया। मुझे उसे पढ़ने में बहुत आनन्द आया और उस दिन ही मैंने उसे दो-तीन बार पढ़ा। उसे पढ़कर मुझे भी कुछ लिखने की सनक सवार हुई। “बच्चनजी से मैं बहुत अधिक प्रभावित हुआ हूँ। इसके कई कारण हैं, पहला तो यही कि बच्चनजी की तरह मुझे भी ज़िन्दगी से बहुत लड़ना पड़ा है, अब भी लड़ रहा हूँ, और शायद भविष्य में भी लड़ता ही रहूँ।”

ये पंक्तियाँ सन् 1944 में प्रकाशित ‘नीरज’ की पहली काव्य-कृति ‘संघर्ष’ से उद्धृत की गई हैं। ‘संघर्ष’ में ‘नीरज’ ने बच्चनजी के प्रभाव को ही स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत यह पुस्तक भी उन्हें समर्पित की थी।

‘संघर्ष’ की भूमिका में प्रख्यात समालोचक डॉ. गुलाबराय ने उन दिनों कवि ‘नीरज’ के काव्य की भाव-भूमि के सम्बन्ध में जो भविष्यवाणी की थी, वह आज भी उनकी रचनाओं को पढ़कर सत्य उतरती मालूम होती है। उन्होंने लिखा थाः

‘नीरज’ जी के रुदनमय गानों में निराशा की अन्तर्धारा स्पष्ट रूप से झलकती है और वह जीवन के कटु अनुभवों से निःसुत हुई प्रतीत होती है। जहाँ अमृत ही विष बन जाए वहाँ निराशा का होना स्वाभाविक ही है। अमृत को विष बनाने वाली कौन-सी घटनाएँ हैं, और कहाँ तक वे सत्य हैं, यह उनके वैयक्तिक जीवन का प्रश्न है। किन्तु इन कविताओं से एक ठेस का अनुमान होता है।

उसकी दूसरी कृति अन्तर्ध्वनि सन् 1946 में प्रकाशित हुई थी। उसमें ‘बच्चन’ के प्रभाव से मुक्त होने का प्रयत्न किया है और ‘विभावरी’ (1951) तक आते-आते तो उसने अपना स्वतंत्र जीनव-दर्शन ही अपना लिया।

उसके जीवन-दर्शन की मोटी रूपरेखा यों निश्चित की जा सकती है। वह सौन्दर्य, प्रेम और मृत्यु इन तीन सृष्टि-रूपों का कलाकार है। उन्हें वह क्रमशः चिति (स्थिति) गति और यति भी कहता है। सौन्दर्य को - चाहे वह प्रकृति-सौन्दर्य हो अथवा मानव-सौन्दर्य - वह जीवन का प्रमुख प्रेरणा-स्त्रोत मानता है और उसे सृष्टि का मूल तत्व मानता है। प्रेम की परिभाषा ‘नीरज’ ने एक स्थान पर इस प्रकार की हैः

प्यार है सभ्यता सजी खड़ी,
प्यार है कि वासना बँधी पड़ी,
प्यार है कि आँख में शरम जड़ी,
प्यार बिन मनुष्य दुश्चरित्र है।

इसे उसने आगे भी स्पष्ट करते हुए यों प्रकट किया हैः

प्रेम है कि ज्योति-स्नेह एक है।
प्रेम है कि प्राण-देह एक है,
प्रेम है कि विश्व-देह एक है,
प्रेम-हीन गति प्रगति विरूद्ध है।

इसीलिए वह प्रेम को 'गति' मानता है। जीवन के सामने जब कोई आदर्श, कोई उद्देश्य और लक्ष्य होता है तब ही जीवन में गति आती है और प्रेम जीवन को सही आदर्श (मंज़िल) देता है। लेकिन जो गतिशील है उसके लिए विश्राम भी अत्यावश्यक है। श्वास को विश्राम देने के लिए 'नीरज' का कवि मृत्यु की सत्ता आवश्यक समझता है। उसे यह 'यति' कहता है। इसकी सम्पुष्टि उसके इस पद से होती हैः

जीवन क्या, मिट्टी के तन में,
केवल 'गति' भर देना।
और मृत्यु क्या, उस 'गति' को ही,
केवल 'यति' कर देना।

'विभावरी' से लेकर 'प्राणगीत' के पूर्वार्ध तक का अधिकांश काव्य इन्हीं तीन सत्यों के आसपास घूमता नज़र आता है। उनकी किसी-किसी रचना में ये तीनों सत्य एक साथ मिलते हैं: किसी में दो और किसी में केवल एक ही।

उसके काव्य-विकास की मंज़िलों को इस प्रकार नापा-जोखा जा सकता है। उसके 'संघर्ष' में यदि घोर निराशा, अतृप्ति, वेदना, विवशता और आकुलता है, जो 'अन्तर्ध्वनि' में वही आकुलता और वेदना मृत्यु तथा रुदन का वरण करती-सी लगती है। 'विभावरी' में उसने दिशा ही बदल दी है। उसमें यह जीवन-दर्शन को नवीन-दृष्टि से देखने लगा है। इसमें यह 'प्रेम' को प्राधान्य देने लगा है। 'नीरज' के मन में मनुष्य के अन्दर करुणा, घृणा, दम्भ, द्वेष, वैषम्य और संहार का जो अहम् है उसके समर्पण का नाम ही 'प्रेम' है। प्रेम की दो परिणतियाँ हैं - एक 'विश्व-प्रेम' और दूसरी 'ईश्वर-प्रेम' 'विश्व-प्रेम के अन्तर्गत 'मानव-प्रेम' है और 'ईश्वर-प्रेम' में आध्यात्मिक भाव-धारा प्राधान्य है। 'यही 'मानव-प्रेम' उसकी कविता का मूल स्वर है, शक्ति है - और यही उसकी कमज़ोरी भी। अपनी कमज़ोरी की घोषणा करता हुआ वह कहता है।

तुम मुझे इसके लिए चाहे करो बदनाम
क्यों न कितने ही बुरे मेरे धरो तुम नाम
दण्ड भी चाहे कठिन तुम दो मुझे इतना
डूब जाए आँसुओं में, हर सुबह हर शाम।
पर यही अपराध मैं हर बार करता हूँ।
आदमी हूँ, आदमी को प्यार करता हूँ।

शक्ति वह इसे इसलिए मानता है कि मनुष्य-प्रेम ने ही कवि के आस-पास बनी हुई धर्म-कर्म, जात-पात आदि की दीवारों को ढहा दिया है। जिस सत्य को वह खोजने निकला था, उसने वादों के भीषण झंझावात में भी उसे पथभ्रष्ट नहीं होने दिया। उसकी इन पंक्तियों में यह साफ़ प्रकट होता है।

पर्वतों ने झुका शीश चूमे चरण,
बाँह डाली कली ने गले में मचल,
एक तसवीर तेरी लिये किन्तु मैं,
साफ़ दामन बचाकर गया ही निकल।

सौन्दर्य और प्रेम का विश्लेषण करना भी उसकी कविता का अभीष्ट ध्येय है। उसके 'परस तुम्हारा प्राण बन गया, दरस तुम्हारा श्वास बन गया' नामक गीत में सौन्दर्य और प्रेम की जो सफल अभिव्यक्ति हुई है, वह अभूतपूर्व है। इसमें 'प्राण' का अर्थ है 'चेतना', और 'श्वास' का अर्थ है 'गीत'। अपने एक गीत में उसने इन तीनों रूपों का विश्लेषण करते हुए इस प्रकार लिखा है:

इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
ज़िन्दगी थक गई, मौत चलती रही।
एक ऐसी हँसी हँस पड़ी धूल यह
लाश इन्सान की मुस्कुराने लगी।
तान ऐसी किसी ने कहीं छेड़ दी
आँख रोती हुई गीत गाने लगी।
एक नाज़ुक किरन छू गई इस तरह
ख़ुद-ब-ख़ुद प्राण का दीप जलने लगा
एक आवाज़ आई किसी ओर से
हर मुसाफिर बिना पाँव चलने लगा,
रूप के गाँव का पर मिला छोर यों
देह बढ़ती रही, उम्र ढलती रही।

उक्त तीनों सत्यों के अतिरिक्त 'नीरज' ने 'मृत्यु-गीत' लिखकर जिस भाव-धारा का प्रचलन किया है, वह भी अपना एक विशेष स्थान रखती है। अपने 'मृत्यु-गीत' में 'नीरज' ने जहाँ अमरता पर व्यंग्य किया है, वहाँ जीवन की यथार्थवादी सृष्टि का अंकन करके मरते हुए मानव का मनोवैज्ञानिक चित्रण भी किया है। ऐसी रचनाओं में 'नीरज' का कवि जहाँ मानव के जीवन का तटस्थतापूर्वक मूल्यांकन करने में सफल हुआ है वहाँ उसने संसार को आत्मा की अमरता का सन्देश भी दिया है और मृत्यु की समाजवादी दृष्टि की प्रतिष्ठापना भी की है। अपने 'मृत्यु-गीत' में एक स्थल पर 'नीरज' सांसारिक प्राणियों को चुनौती देता हुआ कहता है:

अब आँसू की आवाज़ न मैं सुन सकता हूँ
अब देख न सकता मैं गोरी तसवीरों को
अब चूम न सकता मैं अधरों की मुस्कानें
अब बाँध न सकता बाँहो की ज़ंजीरों को।
मेरे अधरों में घुला हलाहल है काला,
नयनों में नंगी मौत खड़ी मुसकाती है,
'है राम नाम ही सत्य, असत्य और सब-कुछ'
बस एक यही ध्वनि कानों में टकराती है।

ऐसी ही भावना की अभिव्यक्ति 'नीरज' ने उस कविता में की है जिसमें मानव की आत्मा अपने साथी की खोज में इधर-उधर भटक रही है और जिसे खोजने के लिए, जिसको प्राप्त करने के लिए बार-बार उसे मिट्टी के ये कपड़े बदलने पड़ते हैं। यह कहता है:

नाश के इस नगर में तुम्हीं एक थे
खोजता मैं जिसे आ गया था यहाँ
तुम न होते अगर तो मुझे क्या पता
तन भटकता कहाँ, मन भटकता कहाँ।
वह तुम्हीं हो कि जिसके लिए आज तक
मैं सिसकता रहा शब्द में, गान में
वह तुम्हीं हो कि जिसके बिना शव बना,
मैं भटकता रहा रोज़ शमशान में।

'विभावरी' के बाद उसकी प्रतिभा ने 'मृत्यु-गीत' का जो नवीन जीवन-दर्शन दिया, वह हिन्दी-काव्य जगत् में एकदम नवीन बौद्धिक चेतना और विचार-सरणी का निर्देशक है। 'मृत्यु-गीत' के बाद उसकी चिन्तन प्रणाली ने एक और नया मोड़ लिया है और वह है 'रोटी' अर्थात् 'पेट की भूख' का; जिसे वह सत्य मानता है। जिस प्रकार हृदय की भूख (प्रेम) एक आदर्श को जन्म देती है, उसी प्रकार पेट की भूख भी मानव में एक नवीन चेतना का प्रस्फुटन करती है। 'नीरज' की मान्यता यह है कि रोटी की भूख भी प्रेम के अन्तर्गत आती है। उसकी इस प्रकार की रचनाएँ 'प्राण-गीत' में संकलित हैं। ये रचनाएँ जन-जागरण और प्रेरणा की दृष्टि से अधिक सशक्त और सबल प्रतीत होती हैं। उसकी ऐसी रचनाओं में '30 जनवरी: एक आदेश', 'अब युद्ध नहीं होगा', 'जीवन-जल', 'आदमी देह से नहीं, नेह से जीता है', 'फूलों का विद्रोह', 'जगत् सत्यं ब्रह्म मिथ्या' आदि अत्यन्त ही सजीव बन पड़ी है। अपनी '30 जनवरी: एक आदेश' शीर्षक रचना में उसने राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी की शहादत पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कवि और चित्रकार को जो आदेश दिया है वह पठनीय है। वह लिखता है:

है तीस जनवरी आज, न स्याही माँग कलम

कुछ लिखना है तो लहू काग़ज पर उतार,
गर गाने का है चाव, तोड़ दे यह वीणा
बन्दूक उठा, गोली निकालकर भर मल्हार,
ओ चित्रकार, तसवीर देवता की न खींच
जो मनुज मर गया है उसको दे रूप-रंग,
यमुना-तट पर सो रहा मसीहा जो अपना
उसको जीवित कर, भर उसमें यौवन-उमंग।

'नीरज' ने मुख्यतः गीत लिखे हैं। अपने गीतों के कारण वह काफ़ी लोकप्रिय भी हुआ है। हिन्दी-कविता के पाठकों की इधर जो नई पीढ़ी तैयार हो रही है और हुई है, उसमें से अधिकांश 'नीरज' से बहुत प्रभावित हैं। इसका कारण उनके काव्य-पाठ का ढंग ही नहीं, बल्कि उनकी सरल, प्रवाहपूर्ण शैली, शब्दों की भंगिमा, परिचित प्रतीकों की नये संदर्भ में योजना तथा सामाजिक चेतना भी है। यह तो सही है कि 'नीरज' को लोकप्रिय बनाने में उसके सरस कण्ठ और युवकोचित भावुकता से परिपूर्ण गीतों का हाथ है; किन्तु हम यह भी नहीं भुला सकते कि इसमें उसकी निर्झर-सी अबाध गति और स्वाभाविक भाषा में गुँथी हुई सजल, तरल, कोमल अनुभूति से परिपूर्ण शब्दावली का भी बड़ा योग है। 'नीरज' संसार की पीड़ा तथा उसके क्रन्दन को अपना क्रन्दन मानता है, यहाँ तक कि अखिल सृष्टि के मानव-समूह को भी अपने प्यार में साझी समझता है। वह कहता हैः

मैं उन सबका हूँ कि नहीं कोई जिनका संसार में।
एक नहीं, दो नहीं हज़ारों साझी मेरे प्यार में।।
मेरा चुम्बन चाँद नहीं, सूरज का जलता भाल है,
आलिंगन में फूल न कोई, धरती का कंकाल है,
वर्तमान के लिए विकल मैं, विरही नहीं अतीत का,
नव भविष्य का नव स्वर्णोदय, सपना मेरे गीत का,
किसी एक टूटे स्वर से ही, मुखर न मेरी श्वास है,
लाखों सिसक रहे, गीतों का क्रन्दन हाहाकार में,
एक नहीं, दो नहीं, हज़ारों साझी मेरे प्यार में

यही नहीं कि वह मानव-मात्र को अपने प्यार में साझी समझता है, वह स्वयं भी पथ की कठिनाइयों से हार मानने वाला नहीं है, उनके सामने झुकनेवाला नहीं है। अपने मार्ग पर अविराम गति से बढ़ते जाने की जो अद्भुत क्षमता उसमें है, उसकी घोषणा वह इस प्रकार करता हैः

मैं मुसाफ़िर हूँ कि जिसने है कभी रुकना न जाना,
है कभी सीखा न जिसने मुश्किलों में सिर झुकाना,
क्या मुझे मंज़िल मिलेगी या नहीं—इसकी न चिन्ता

क्योंकि मंज़िल है डगर पर सिर्फ़ चलने का बहाना,
और तो सब धूर, पथ पर चाह चलने की अमर बस,
मैं अगर पद का न लूँ अधिकार—यह सम्भव नहीं है।
पन्थ की कठिनाइयों से मान लूँ मैं हार—यह संभव नहीं है।

'नीरज' ने अपनी कविताओं में जहाँ प्रेम के मांसल रूप का चित्रण 'आज तो मुझसे न घबराओ तुम्हें मेरी कसम है' जैसे गीतों में किया है। वहाँ उसने प्रेम के आध्यात्मिक पक्ष की भी 'एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के, साँस मेरी सिसकती रही रात-भर' नामक गीत में मार्मिक अभिव्यंजना की है। भक्ति के सभी रूपों का वर्णन 'नीरज' ने अपनी रचनाओं में प्रचुर भाषा में किया है। उसकी 'निराकार जब तुम्हें दिया आकार', 'सुबह न आई शाम न आई' तथा 'तुमसे लगन लगाई उमर-भर नींद न आई' आदि कविताएँ इसकी ज्वलंत साक्षी हैं। तब ही तो वह कहता हैः

क्या करेगा प्यार यह भगवान को
क्या करेगा प्यार वह ईमान को
जन्म लेकर गोद में इन्सान की
प्यार कर पाया न जो इन्सान को

मानव-प्रेम को वह सृष्टि में सबसे बड़ा धर्म मानता है। यदि किसी ने मानव-प्रेम का पाठ पढ़ लिया तो समझो उसे साक्षात् स्वर्ग मिल गया। वह लिखता हैः

जाति-पाति से बड़ा धर्म है,
धर्म-ध्यान से बड़ा कर्म है
कर्म-काण्ड से बड़ा मर्म है
मगर सभी से बड़ा यहाँ ये छोटा-सा इन्सान है
और अगर वह प्यार करे तो धरती स्वर्ग समान है।

जीवन में 'नीरज' जिस सौन्दर्य का अभिलाषी और उपासक है उसका अर्थ सामंजस्य और सन्तुलन है। वह अभेदवादी है, अद्वैतवादी नहीं। आध्यात्मिक अनुभूतियों के चित्रण में उसने जिस एकाकी आत्मा को आधार बनाया है, वह अहं-केन्द्रित है। कवि की आत्मा अपने साथी के बिछोह में अपने भीतर और बाहर के सभी प्रकार के दुःखों का प्रकटीकरण करती है। 'नीरज' के ऐसे काव्य की वर्ण्य वस्तु जीवन की संक्षिप्तता है, वह संसार की प्रत्येक वस्तु को क्षणभंगुर मानता है, इसी कारण संसार का प्रत्येक प्राणी मृत्यु के भय से आतंकित है। इस सम्बन्ध में 'नीरज' ने अपनी 'विदा-क्षण आ पहुँचा' शीर्षक कविता में इस प्रकार लिखा है:

रह गए धरे के धरे ताख में ज्ञान-ग्रन्थ
छुट गई बँधी की बँधी रतन वाली गठरी

लुट गई सजी की सजी रूप की हाट और
देखती खड़ी की खड़ी रही सिगरी नगरी
कुछ ऐसी लूट मची जीवन-चौराहे पर
ख़ुद को ही ख़ुद लूटने लगा हर सौदागर
औ' जब तक कोई आए हमको समझाए
तब तक भुगताने ब्याज महाजन आ पहुँचा
जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की
तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा।

एक स्थल पर 'नीरज' ने अपने 'आराध्य' में समग्र संसार के मिलने की कल्पना करते हुए अपने व्यक्तिसत्तापरक प्रेम को समाज-सत्ता के साथ इस प्रकार चित्रित किया है कि यह देखते ही बनता है। वह लिखता है:

मैं तो मेरे पूजन को आया था तेरे द्वार
तू ही मिला न मुझे यहाँ मिल गया खड़ा संसार

लगभग ऐसी ही भावना का चित्रण उसने इन पंक्तियों में भी लिखा है:

फूल डाल का पीछे पहले उपवन का शृंगार है
कोई नहीं पराया मेरा घर सारा संसार है।

'नीरज' ने अपने काव्य का माध्यम जहाँ संसार के सौन्दर्य, प्रेम, वासना तथा मृत्यु-जनित भय को बनाया है वहाँ उसने भूख, बेकारी, युद्ध, अन्याय और अधर्म के विरुद्ध भी खुलकर लिखा है। इस प्रकार की भावना का चित्रण उसकी 'फूलों का विद्रोह' नामक रचना में हुआ है। फूल के प्रतीक से 'नीरज' ने एक बन्दी की विद्रोहमयी आवाज़ इस प्रकार ध्वनित की है-

मत इसे कैद कर इन चाँदी के महलों में
बागी घर की ही दीवारें हो जायेंगी,
मत हाथ बढ़ा इसके छूने को ओ पागल
दुश्मन कर की ही तलवारें हो जायेंगी,
तू धूल न इस पर फेंक, सीख बस यह इससे
किस भाँति विश्व में सौरभ लाया जाता है
कैसे विनाश पर विजयी होता है विकास
किस तरह धूल में फूल खिलाया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान 'नीरज' प्रेम से करने का पक्षपाती है। वह बुद्धिवाद को उसी सीमा तक अपनाने का हिमायती है, जिस सीमा तक वह विज्ञान और कला में समन्वय स्थापित कर सके। वह तलवार के स्थान पर कला द्वारा ही व्यवस्था-परिवर्तन करने

का स्वप्न देखने वाला कलाकार है। वह मार्क्सवाद और गांधीवाद के समन्वय द्वारा ही विश्व-शान्ति की प्रस्थापना करने वाला सशक्त साहित्यिक है।

'नीरज' ने प्रकृति-सम्बन्धी रचनाएँ बहुत कम लिखी है। कदाचित् इसका एकमात्र कारण यह है कि यह मानव-प्रकृति को बाह्य-प्रकृति से अधिक सुन्दर समझता है। इसी कारण उसने मानव-प्रकृति का चित्रण ही अधिकाशंतः अपनी रचनाओं में किया है।

'नीरज' का काव्यकलागत दृष्टिकोण भाषा, शब्दों के प्रयोग, छन्द, लय, सन्दर्भ, वातावरण और प्रतीक-योजना आदि सभी दृष्टि से इस पीढ़ी के कवियों में सर्वथा अलग और विशिष्ट-स्थान रखता है। 'नीरज' ने अपनी रचनाओं में सभी प्रकार की भाषा का व्यवहार किया है। वह अपनी अनुभूतियों के आधार पर ही शब्दों, मुहावरों और क्रियाओं का प्रयोग करता है। यही कारण है कि उसके काव्य में हमें जहाँ संस्कृतनिष्ठ शैली दृष्टिगत होती है, वहाँ उर्दू जैसी सरल और सादी शब्दावली का व्यवहार ही देखने को मिलता है। उसकी रचनाओं को हम शैली की दृष्टि से दार्शनिक, लोकगीतात्मक, चित्रात्मक और संस्कृत-निष्ठि आदि विभिन्न रूपों में विभक्त कर सकते हैं। दार्शनिक शैली में वह प्रतीक-प्रधान व्यंजन के द्वारा सीधे-सादे ढंग से अपनी बात कहता चलता है। उसकी रचनाएँ संगीत, अलंकार और विशेषणों आदि से विहीन सीधी-सादी होती है। लोकगीतात्मक शैली में प्रायः फक्कड़पन रहता है, और ऐसी रचनाओं में वह प्रायः हस्व-ध्वनि-प्रधान शब्द ही प्रयुक्त करता है। उसकी लोकगीत-प्रधान शैली से लिखी गई रचनाओं में माधुर्य भाव की प्रचुरता देखने को मिलती है। चित्रात्मक शैली में लिखी गई रचनाओं में वह शब्दों द्वारा चित्र-निर्माण करने की जो क्षमता रखता है, वह अभूतपूर्व है। परुष शैली में लिखी गई उसकी वे ही रचनाएँ हैं, जो ओज, तारुण्य और बलिदान का संदेश देने के लिए लिखी गई है। ओज लाने के लिए कठोर शब्दों का प्रयोग नितान्त वांछनीय है। ऐसी रचनाओं में 'नीरज' ने जीवन के निकटतम प्रतीकों का प्रयोग ही बहुलता से किया है। संस्कृतनिष्ठ शैली वाली रचनाओं में 'नीरज' की अनुभूति का आधार प्राचीन भारतीय परंपरा रही है। 'आदिपुरुष' उसकी इसी प्रकार की शैली में लिखी गई रचना है। एक उदाहरण लीजिए:

> ध्वनि-वसना, स्वर कर्णा, लय-वर्णा, गति-चरणा,
> जो शून्य-समाधि लगाये बैठी थी वाणी,
> कवि-कविता, काव्य-छन्द गीतों में गूँज उठी
> जिस दिन मुझसे बोला मेरे दृग का पानी!

प्रतीक योजना की दृष्टि से भी 'नीरज' की कविताएँ सर्वथा अलग हैं। उसने अपनी रचनाओं में पुराने प्रतीकों को सर्वथा नये रूप और नये अर्थ में प्रयुक्त किया है। उसकी—

> फूल डाली से गुँथा ही झर गया,
> घूम आई गन्ध पर संसार में

पंक्तियों में ‘फूल’ व्यक्ति का प्रतीक और ‘गंध’ व्यक्तित्व का प्रतीक है। इसी प्रकार—

बन्द फूलों में समुन्दर का शरीर,
किन्तु सागर फूल का बन्धन नहीं है।

शीर्षक गीत में ‘मृत्तिका’ और ‘चेतना’ की बात नये प्रतीकों के माध्यम से कही गई है।

इसी प्रकार ‘आसावरी’ नामक अपने कविता-संग्रह में ‘नीरज’ ने ‘विदा-क्षण आ पहुँचा’ नामक कविता में मोह और माया की बात सर्वथा नये प्रतीकों के माध्यम से कही है। वह लिखता है:

कल सुबह एक मनिहारिन मेले में बैठी
थी बेच रही चूड़ियाँ हज़ारों चालों की
इकरंगी-दोरंगी भाँवर की, गौने की
ब्याही-अनब्याही सभी कलाई बालों की,
कौतूहलवश मैंने भी चाहा, मैं अपनी
पत्नी के लिए ले चलूँ चूड़ी सितवर्णी
पर जब तक मैं कुछ मोल करूँ उससे तब तक
ख़ुद मुझे खोजता कोई कंगन आ पहुँचा,
जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की
तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा।

ऐसे एक नहीं, अनेक उदाहरण उसकी रचनाओं में से दिए जा सकते हैं, जिसमें नये प्रतीकों के माध्यम से ‘नीरज’ ने अपने अभीष्ट की अभिव्यक्ति की है। अपनी ‘जीवन-जल’ शीर्षक कविता में भी उसने कुछ नई बात ही कही है। उस रचना की प्रारंभिक चार पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

रह चुकी बहुत बरसात कैद में मेघों की
उसको ज़मीन पर अब उतारना ही होगा
शरमीले नभ के सूरज-चाँद-सितारों को
पानी का घूँघट अब उघारना ही होगा।

इन पंक्तियों मे ‘बरसात’ जीवन का प्रतीक है, ‘मेघ’ उच्च वर्ग का और ‘ज़मीन’ निम्न वर्ग का। उसकी ‘नसेनी’ शीर्षक रचना भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। वह लिखता हैः

दो बाँस, तीन डंडों से बनी नसेनी यह
जो खड़ी सहन का जोड़ रही छत से नाता

इस पद में ‘दो बाँस’ मन और बुद्धि के हैं, और ‘तीन डंडे’ (सीढ़ियाँ) जीवन के तीन पन—बचपन, यौवन आरै बढ़ापा हैं। ‘छत’ मृत्यु है, और ‘सहन’ जन्म।

‘नीरज’ की ‘फूलों का विद्रोह’ शीर्षक कविता भी प्रतीक योजना का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

कैंची से काँटों की तो क्रान्ति कतर डाली
पर फूलों का विद्रोह कौन बल रोकेगा!
आ रही सुरभि की जो आँधी हर उपवन में
पतझर कौन-सा है जो इसको टोकेगा!
रे गन्ध नहीं बाँधी जा सकती ताकत से,
यह तूफ़ानों के बाल खोल लहराती है,
गाती है जब वह बैठा चिता की लपटों में
मरघट की मिट्टी तक से क्रान्ति उगाती है।

इन पंक्तियों में ‘फूल’ सौन्दर्य, कला और साहित्य का प्रतीक है। कविता का भाव यह है कि अस्त्र के द्वारा (यानी कैंची के द्वारा) काँटा (अस्त्र) काटा जा सकता है, पर साहित्य, कला और सौन्दर्य (जिसका प्रतीक फूल है) के द्वारा जो मानसिक क्रान्ति होती है, उसे किसी अस्त्र से नहीं कुचला जा सकेगा।

‘नीरज’ ने मीरा की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले भी कुछ गीत लिखे हैं। जिसमें ‘रीती गागर का क्या होगा’, ‘माँ मत ऐसे टेर’ जैसे गीत उल्लेखनीय हैं:

‘नीरज’ और अन्य कला-कृतियों के साथ यदि उसकी उन पातियों का उल्लेख न किया गया जो उसने समय-समय पर लिखी हैं, तो भारी अन्याय होगा। ‘नीरज’ की ऐसी पातियाँ ‘नीरज की पाती’ नामक पुस्तक में संगृहीत हैं। पातियाँ उसने हिन्दी के लिए सर्वथा नवीन उर्दू के उस छन्द में लिखी हैं, जिसका वज़न हिन्दी के प्रचलित छन्दों के समान मात्राओं पर आधारित न होकर लय (बहर) पर निर्भर रहता है। इस संग्रह के प्रारम्भ में ‘नीरज’ ने यह ठीक ही लिखा है:

काँपती लौ, यह सियाही, यह धुआँ, यह काजल,
उम्र सब अपनी इन्हें गीत बनाने में कटी,
कौन समझे मेरी आँखों की नमी का मतलब,
ज़िन्दगी वेद थी, पर जिल्द बँधाने में कटी।

इस पुस्तक की पहली पाती लिखते हुए ‘नीरज’ ने अपनी प्रेयसी को संबोधित करते हुए अपने मार्ग का संकेत इस प्रकार किया है:

इसलिए आज तुझे आखिरी खत और लिख दूँ,
आज मैं आग के दरिया में उतर जाऊँगा,
गोरी-गोरी-सी तेरी सन्दली बाँहो की कसम,
लौट आया तो तुझे चाँद नया लाऊँगा।

इसी प्रसंग में यह उल्लेख कर देना भी अप्रासंगिक न होगा कि एक बार 'नीरज' देश के एक बड़े नगर में कविता-पाठ करने गया था, वहाँ से जब वह अपने घर वापस लौटा तो घर पर उसे किसी महिला द्वारा लिखा गया एक पत्र मिला। पत्र में उसकी कविता की प्रशंसा करते हुए उसमें निहित वेदना, अतृप्ति और सौन्दर्य के प्रति संवेदनापूर्ण रुख अपनाया गया था। इसी संदर्भ में उसे उसका उत्तर भी देना पड़ा। फिर क्या था, उसका यह पत्राचार जारी हो गया। इसी कड़ी की कुछ कविताएँ 'नीरज की पाती' में संकलित हैं। उस महिला के पत्र प्रायः अंग्रेज़ी में आए थे जिनके अनुवाद स्वयं 'नीरज' ने करके 'लिख-लिख भेजत पाती' नाम से प्रकाशित भी कर दिए हैं।

'नीरज' की कविता के प्रति उस महिला का सहज आकर्षण उनके दूसरे पत्र की निम्न पंक्तियों से भली-भाँति प्रकट हो जाएगा। वह लिखती है:

"मैंने आपकी कविताओं को जो इतना भाव-विह्वल होकर प्यार किया है, उसका कारण यह है कि उनमें कुछ ऐसा है जो मेरे स्वयं के अनुकूल है और जिसे मैं शब्दों की दीवार के पार भी - उसके पार भी जिसे आप अतीत के कुछ सुन्दर सपनों और मधुर स्मृतियों के टूटे और बिखरे हुए वेदना-स्वर कहते हैं - सीधी स्वयं अनुभव कर सकती हूँ। क्या आप विश्वास करेंगे, यदि मैं यह कहूँ कि एक आश्चर्यजनक रीति से, आपसे — हाँ सचमुच आपकी कविताओं के द्वारा ही मैं एक अव्यक्त आत्ममैत्री अनुभव करती हूँ।"

इस महिला के ही क्या, ऐसे अनेक पाठकों और प्रशंसकों के अनेक पत्र 'नीरज' को समय-समय पर मिलते रहे हैं। क्योंकि इस पत्र की भाषा और उसमें निहित निष्ठा असाधारण थी, इसीलिए 'नीरज' को इसका उत्तर देना पड़ा। इस प्रकार इन पत्रों की शृंखला ही शुरू हो गई।

एक और पत्र में उस महिला ने जो भावनाएँ व्यक्त की हैं, उनसे कवि के व्यक्तित्व के प्रति उसकी निष्ठा प्रकट होती है। वह लिखती है:

"तुम तो रंग-बिरंगे प्रकाश से जगमगाते हुए अपने महल में सदैव ही मित्रों और प्रशंसको से घिरे रहते होगे ओर तुम्हारे लिए प्रकृति का प्रत्येक कोष उन्मुक्त होगा। यदि उन असंख्य मित्रों की संख्या में एक नाम जुड़ जाए या घट जाए, तो तुम्हारे निकट कोई महत्त्व नहीं है। इसलिए मैं अपने एकान्त भवन में अकेली बैठी हूँ और बैठी रहूँगी। जिस दिन तुम्हारे मित्र तुमसे विदा लेकर चले जाएँ और तुम्हारा भवन सूना हो जाए, तब उस एकाकीपन में तुम मुझे बुलाना और तुम्हारे ही शब्दों में तब 'मैं दर्शन बन आऊँगी।"

एक और पत्र में जो भावनाएँ व्यक्त की गई हैं, उनसे 'नीरज' के काव्य की गरिमा पर व्यापक प्रकाश पड़ता है। वह कहती है:

"मैं तुम्हें तुम्हारी कविताओं के बाद भी प्यार करती हूँ। जो कुछ तुम लिखते हो उसमें एक जादू होता है और उससे मैं मंत्र-मुग्ध हो जाती हूँ। किन्तु उसके बाद भी कुछ ऐसा है जो मुझे मोहता है।"

'नीरज' की कविता के मानवतावादी स्वर की प्रशंसा में उस महिला ने एक पत्र में यह लिखा:

"तुम्हारी रचनाओं में अनुभूति की जो तीव्रता है, वह मुझे इतना अधिक प्रभावित नहीं करती, जितना कि तुम्हारा मानवतावादी उदार दृष्टिकोण, तथा तुम्हारा जीवन-दर्शन, जो तुम्हारी कविताओं के अतिरिक्त तुम्हारे प्रत्येक कर्म में भी प्रतिबिम्बित होता है। तुम जो लिखते हो, वही तुम्हारा जीवन है, यह बहुत बड़ी बात है।"

यही नहीं कि उनके काव्य और उसकी पृष्ठभूमि के प्रति ही उक्त महिला ने आस्था प्रकट की हो। 'नीरज' के व्यक्तित्व की प्रशस्ति करते हुए वह लिखती है:

"मेरे निकट जो (सबसे) महत्त्वपूर्ण है, वह है तुम्हारे व्यक्तित्व की शिशु जैसी सरलता, तुम्हारे चरित्र की एकनिष्ठता, तुम्हारी आत्मा की विशालता, कष्टों को सहने की तुम्हारी क्षमता, असत्य को अस्वीकार करने की तुम्हारी दृढ़ता, जीवन को देखने की तुम्हारी मौलिक दृष्टि और मेरे तथा समस्त मानव-जाति के प्रति तुम्हारा असीम अनुराग और प्रेम।"

ऊपर की पंक्तियों में उद्धत किए गए 'लिख-लिख भेजत पाती' नामक पुस्तक में प्रकाशित पत्रों के कुछ अंश इस बात के ज्वलन्त साक्षी हैं कि 'नीरज' के पाठक उसकी रचनाओं को डूबकर पढ़ते हैं और वह अपने पाठकों में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है। अपनी पीढ़ी के कवियों में कदाचित् 'नीरज' ही ऐसा कवि है जिसे अपने पाठकों का सबसे अधिक प्यार और दुलार मिला है। परन्तु यह दुर्भाग्य की ही बात है कि 'नीरज' ने जिसे चाहा, वह उसे नहीं मिल सका। उसकी कविता में करुणा का आधिक्य इस कारण है कि बचपन से लेकर अभी तक उसका जीवन विभिन्न प्रकार के अभावों का केन्द्र रहा है। भौतिक अभाव भी और आध्यात्मिक अभाव भी। उसके कुछ सपने अवश्य ही पूरे हुए, किन्तु समय गुज़र जाने के बाद। आज भी वह बाह्य दृष्टि से सब प्रकार से समृद्ध और सुखी लगता है, किन्तु ऐसा नहीं है। निरन्तर अस्वस्थ रहने के कारण तथा अन्य आध्यात्मिक अभावों के कारण वह अपने भीतर अभी भी अकेला है।

'नीरज' ने यद्यपि सभी वादों और धाराओं से सम्बन्धित रचनाएँ लिखी हैं, किन्तु 'प्रयोगवाद' से प्रभावित ऐसी कविता उसने कभी नहीं लिखी, जिसे आज 'नई कविता' नाम से पुकारा जाता है। उसके विचार में ऐसी रचनाओं में प्रभविष्णुता कम होती है। वह नई कविता का विरोधी नहीं है। लेकिन उसका विचार है कि वह किताबों में पढ़ने तक ही सीमित रह जाएगी, जन-समाज में समादृत नहीं हो सकेगी; यदि ऐसा हुआ तो वह हिन्दी-कविता के भविष्य के लिए खतरनाक है।

'नीरज' ने अपने थोड़े-से जीवन में जो ख्याति और सम्मान अर्जित किया है, वह भी ईर्ष्या की वस्तु है। हिन्दी में वह अकेला ही ऐसा कवि है, जिसने अपनी कविता तथा कवि-सम्मेलनों के द्वारा मात्र ख्याति ही अर्जित नहीं की, और भी बहुत कुछ अर्जित किया है। यह सौभाग्य की ही बात है कि इतनी छोटी-सी आयु में हिन्दी के इस वरद पुत्र ने इतना वैभव

प्राप्त किया। किन्तु यह देखने में आया है कि इधर 'नीरज' अपने स्वास्थ्य की ओर से बहुत लापरवाह नज़र आने लगा है, यह अच्छी बात नहीं है।

अपनी कविता के सम्बन्ध में नीरज ने लिखा है:

"जब लिखने के लिए लिखा जाता है तब जो कुछ लिखा जाता है उसका नाम है गद्य, पर जब लिखे बिना रहा न जाए और जो ख़ुद लिख-लिख जाए उसका नाम है कविता। मेरे जीवन में कविता लिखी नहीं गई, ख़ुद 'लिख-लिख' गई। ऐसे ही, जैसे पहाड़ों पर निर्झर और फूलों पर ओस की कहानी लिखी जाती है। जिस प्रकार 'जल-जलकर बुझ जाना' दीपक के जीवन की विवशता है, उसी प्रकार 'गा-गाकर चुप हो जाना' मेरे जीवन की मजबूरी है।"

उसने जो कुछ लिखा है, 'वादों' के विवादों से दूर रहकर ही लिखा है। इस सम्बन्ध में उसकी निम्न पंक्तियाँ स्मरणीय हैं:

तुम लिखो हर बात चाहे जिस तरह चाहो,
काव्य को पर वाद का कंगन न बनने दो!

'नीरज' ने गीत के क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि वर्तमान समय में प्रचलित काव्य की समस्त विधाओं में क्रांतिकारी योगदान दिया है। इन दिनों हिन्दी में ग़जल बहुत लिखी जा रही है— लेकिन अधिकांश ग़जलें उर्दू ग़जल की ही नक़ल जैसी हैं। इसके विपरीत नीरज ने सामाजिक चेतना के साथ-साथ हिन्दी ग़जल (नीरज ने इसका नामकरण गीतिका किया है) को भारतीय चिन्तन गीता-उपनिषद से जोड़कर और उसने सूफ़ियों के तसव्वुफ़ को मिलाकर ग़जल (गीतिका) की जो नई ज़मीन और नया रस प्रदान किया है - वह हिन्दी ग़जल की एक अन्यतम उपलब्धि है। अतिशयोक्ति न होगी यदि कहा जाये कि दुष्यन्त कुमार के बाद हिन्दी के एकमात्र वे ही रचनाकार हैं जिनकी ग़ज़लें समान रूप से हिन्दी और उर्दू के पाठकों और श्रोताओं द्वारा सराही जाती हैं।

'नीरज' की लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वह जहाँ हिन्दी के माध्यम से साधारण स्तर के पाठक के मन की गहराई में उतरा है वहाँ उसने गम्भीर से गम्भीर अध्येताओं के मन को भी गुदगुदा दिया है। इसीलिए उसकी अनेक कविताओं के अनुवाद गुजराती, मराठी, बंगाली, पंजाबी, रूसी आदि भाषाओं में हुए है। यही कारण है कि भदन्त आनन्द कौसल्यायन यदि उसे हिन्दी का 'अश्वघोष' घोषित करते हैं, तो 'दिनकर' जी उसे 'हिन्दी की वीणा' मानते हैं। अन्य भाषा-भाषी यदि उसे 'सन्त कवि' की संज्ञा देते हैं, तो कुछ आलोचक उसे 'निराश मृत्युवादी' समझते हैं। इसके विपरीत एक ऐसा भी वर्ग है, जिसे 'नीरज' की यह लोकप्रियता तनिक भी नहीं सुहाती। ऐसे लोग यह कहकर कि 'कवि-सम्मेलनों' और 'नये गीतकारों' ने हिन्दी कविता को सस्ता बना दिया है, 'नीरज' और उसके वर्ग के दूसरे गीतकारों की ख्याति को देखने-सुनने के लिए तैयार नहीं हैं। उन्हें याद रखना चाहिए कि 'नीरज' समय के साथ चल रहा है। वह देश-विदेश की हर धड़कन को कान खोलकर सुन रहा है। उसके प्रत्येक स्पन्दन पर समाज का स्पर्श है। युद्ध के विरोध में यदि

वह गाता है, तो शान्ति के समर्थन में भी वह अपना एकतारा छेड़ता है। एशिया का नव-जागरण यदि उसे गाने की प्रेरणा देता है तो देश की गरीबी, बेकारी, भुखमरी भी उसे चैन से नहीं बैठने देती। जहाँ तक सृष्टि है, वहाँ तक उसकी दृष्टि जाती है। कोई भी ऐसा विषय नहीं है, जो उसके कण्ठ से मुखरित नहीं हुआ है, जिसे उसकी लेखनी ने न छुआ हो। वह सब कुछ दे रहा है, जो मनुष्य का हृदय आज माँग रहा है। इसलिए वह लोकप्रिय है। और जब तक सामाजिक जीवन से वह ऐसा ही संबन्धी बनाए रहेगा, तब तक इसी प्रकार लोकप्रिय बना रहेगा।

अजय निवास, दिलशाद कॉलोनी,
शाहदरा, दिल्ली-32

-क्षेमचन्द्र 'सुमन'

जीवन नहीं मरा करता है

छुप-छुप अश्रु बहाने वालो!
मोती व्यर्थ लुटाने वालो!
कुछ सपनों के मर जाने से जीवन नहीं मरा करता है।

सपना क्या है? नयन सेज पर
सोया हुआ आँख का पानी,
और टूटना है उसका ज्यों
जागे कच्ची नींद जवानी,
गीली उमर बनाने वालो!
डूबे बिना नहाने वालो!
कुछ पानी के बह जाने से सावन नहीं मरा करता है।

माला बिखर गई तो क्या है
ख़ुद ही हल हो गई समस्या,
आँसू गर नीलाम हुए तो
समझो पूरी हुई तपस्या,
रूठे दिवस मनाने वालो!
फटी कमीज़ सिलाने वालो!
कुछ दीपों के बुझ जाने से आँगन नहीं मरा करता है।

खोता कुछ भी नहीं यहाँ पर
केवल जिल्द बदलती पोथी।
जैसे रात उतार चाँदनी
पहने सुबह धूप की धोती,
वस्त्र बदलकर आने वालो!
चाल बदलकर जाने वालो!

चन्द खिलौनों के खोने से बचपन नहीं मरा करता है।
लाखों बार गगरियाँ फूटीं

शिकन न पर आई पनघट पर
लाखों बार किश्तियाँ डूबीं
चहल-पहल वो ही है तट पर
तम की उमर बढ़ाने वालो
लौ की आयु घटाने वालो
लाख करे पतझर कोशिश पर उपवन नहीं मरा करता है।

लूट लिया माली ने उपवन
लुटी न लेकिन गन्ध फूल की,
तूफ़ानों तक ने छेड़ा पर
खिड़की बन्द न हुई धूल की,
नफ़रत गले लगाने वालो!
सब पर धूल उड़ाने वालो!
कुछ मुखड़ों की नाराज़ी से दर्पन नहीं मरा करता है।

गीतकार का जन्म
(दिनकर जी को सादर समर्पित)

जब गीतकार जन्मा, धरती बन गई गोद,
हो उठा पवन चंचल, झूलना झुलाने को
भौंरों ने दिशि-दिशि गूँज बजाई शहनाई
आई सुहागिनी कोयल सोहर गाने को।

शबनम ने स्नान कराया मोती के जल से
पहनाये आकर वस्त्र वसन्त बहारों ने
निशि ने आँजा काजल, उषा ने रचे होंठ
पठवाये खील-खिलौने चाँद सितारों ने।

करुणा ने चूमा भाल, दिया आर्शीवाद
पीड़ा ने शोधी राशि, प्रेम ने धरा नाम
जय हो वाणी के पुत्र घोष कर उठी बीन
अम्बर उतरा आँगन में करने को प्रणाम

दर्शन ने भेंटी दृष्टि, भावना ने भाषा
सूरज ने आभा-ओज, नदी ने गति-प्रवाह
सुन्दरता ने दर्पण, पूजाओं ने अर्चन
बन गया हृदय आकर ख़ुद ही सागर अथाह।

कल्पना पकड़कर हाथ साथ खेलने लगी
होने उन्मुक्त लगे रहस्य के दृढ़ कपाट
काँपने लगा अपवर्ग सिहरने लगा स्वर्ग
न्योछावर हो हो गई मनुज-संस्कृति विराट।

मिल गई राग को देह, आँसुओं को वाणी
पा गया सत्य आकार, हो गया असत् क्षीण
निर्गुण बन गया सगुन स्वरवती हुई वसुधा
हँस उठी प्रकृति ज्यों दीपक में बाती नवीन।

फिर एक दिवस सोलह रतनों का हार पहन
बाँसुरी बजाता निकला जब वह गीतकार
तरुणियाँ ठगी रह गई, गगरियाँ छलक पड़ीं
ज्यों बूँद बहक जाये छू पुरवाई बयार।

बदली लट गूँथ न सकी देख श्यामल कुंतल
मुस्कान निरख बिजलियाँ कौंधना गईं भूल
बिछ गई चरण पर आकर धूप रजत वर्णी
जब खिसक देह से गया तनिक रेशम दुकूल।

माताओं का उर उमड़ पड़ा मानो उनके
अन्तर का ही सारा ममत्व हो धरे देह
युवकों को लगा कि जैसे धरती का यौवन
बाँटता फिर रहा हो घर-घर सौजन्य स्नेह।

बालक दौड़ने लगे पीछे होकर विमुग्ध
रवी का अनुगमन जिस तरह करता है प्रकाश
वृद्धों ने उठ कर शिर मंगल तिलक दिया
सावन का वन्दन करता है ज्यों जेठ मास।

सन्तों ने गीत सुना मन में सोचने लगे
यह गीत कि या कोई नवयुग की गीता है
है शब्द-शब्द उपनिषद् और श्रुति तान-तान
दर्शन तो जैसे उज्जवल गंग पुनीता है।

पपीहे को डाह हुई बोला सारा जीवन
कट गया पिया की ही मोठी मनुहारों में
पर जितना दर्द भरा स्वर है इस गायक का
ऐसा तो दर्द न देखा कभी पुकारों में।

गुनगुना उठी उपवन की डाली से बुलबुल
उफ! कैसा सम्मोहन है इसके गाने में
जी करता है दे डालूँ उम्र इसे अपनी
ऐसा गुलाब तो देखा नहीं ज़माने में।

शरमाकर कहने लगा चाँद पूनम वाला
कितनी प्यारी इसकी सप्नीली चितवन है
होते ही आँखें चार उठाते ही पलकें

बेमोल सदा को बिक-बिक जाता तन-मन है।

राधा सी जग की गली-गली झूमने लगी
तन्मय हो गया विश्व सारा ज्यों वृन्दावन
तट-पनघट सब बन गये एक नव बंसीवट
खिल उठे गीत स्वर-छन्द कुसुम उपवन-उपवन

सब ओर हर्ष-ही-हर्ष विमर्श न रहा शेष
हो गये अस्त दुःख दैन्य दाह तम रोग-शोक
पर देख धरा का यह उत्कर्ष कीर्ति वैभव
जल उठा ईर्ष्या से सबका सब देवलोक

सोचने लगा कोई उपाय ऐसा जिससे
पा सके न संसृति कभी कला का अमृतदान
जब कोई युक्ति न दिखी स्वयं तब ब्रह्मा ने
कर दिया एक दिन भू पर अणुयुग का विधान

जो लौह पुरुष है खड़ा हाथ में लिए वज्र
वह और नहीं कोई विनाश का सहचर है
होने वाली है सफल स्वर्ग को कूटनीति
विज्ञान कला से यदि न डालता भाँवर है।

हज़ारों साझी मेरे प्यार में

मैं उन सबका हूँ कि नहीं कोई जिनका संसार में!
एक नहीं, दो नहीं, हज़ारों साझी मेरे प्यारे में!!

मेरा चुम्बन चाँद नहीं, सूरज का जलता भाल है,
आलिंगन में फूल न कोई, धरती का कंकाल है,
वर्तमान के लिए विकल मैं, विरही नहीं अतीत का,
नव भविष्य का नव स्वर्णोदय सपना मेरे गीत का,
किसी एक टूटे स्वर से ही मुखर न मेरी श्वास है,
एक नहीं, दो नहीं, हज़ारों साझी मेरे प्यार में!!

मैं गाता हूँ नहीं किसी को प्रीति चुराने के लिये,
मेरे यह तप है दुनिया का दुख पी जाने के लिये,
कल जिस राह चलेगा जग मैं उसका पहला प्रात हूँ
तुम्हें अँधेरे में दिखता हूँ पर सूरज के साथ हूँ,
शब्दों के वस्त्रें में तुम पहचान न पाओगे मुझे
मैं बैठा हूँ कफ़न लपेटे हर बागी तलवार में!
एक नहीं, दो नहीं, हज़ारों साझी मेरे प्यार में!

जितने घर वीरान सभी वे मेरे तीरथ-धाम हैं,
बेघरबार दीप जो भी मेरे वनवासी राम हैं,
याद द्रौपदी के प्रण की है गुँथे न अब तक केश जो,
गोवर्धनधारी की स्मृति के शीश उठाये देश जो,
मेरा भी गुलाब की कलियों को मन होता है मगर-
फूल खिलाने हैं मुझको हर आँधी, हर पतझार में!
एक नहीं, दो नहीं, हज़ारों साझी मेरे प्यार में!!

मैंने रात वहाँ काटी चाँदनी जहाँ सोती नहीं,
भोर किया उस जगह, जिस जगह कभी सुबह होती नहीं,
तपी वहाँ दोपहर जहाँ है भूख खड़ी मैदान में,

साँझ हुई उस देश, ज़िन्दगी जहाँ बुझी खलिहान में,
या तो पार लगा दूँगा मैं इस मौसम की नाव को
या फिर बेमौसम डूबूँगा ख़ुद गहरी मँझधार में!
एक नहीं, दो नहीं, हज़ारों साझी मेरे प्यार में!!

जिनके साथी आँधी-अंधड़, जिनकी राह पहाड़ियाँ
उन पर न्यौछावर करता हूँ मैं अपनी फुलवारियाँ,
जिनके घर न दिया जलता, जिनसे प्रकाश नाराज़ है,
राज उन्हें सूरज पर करना मुझे सिखाना आज है,
तुम भी जाओ पानी का यह चीर बदल, आँजो नयन
अंगारों की शादी होगी सावन के त्यौहार में!
एक नहीं, दो नहीं, हज़ारों साझी मेरे प्यार में!!

ओ हर सुबह जगाने वाले

ओ हर सुबह जगाने वाले! ओ हर शाम सुलाने वाले!
इतना दुख रचना था जग में तो फिर मुझे नयन मत देता!

जिस दरवाज़े गया मिले
बैठे अभाव कुछ बने भिखारी
पतझर के घर गिरवी थी,
मन जो भी मोह गई फुलवारी

कोई था बदहाल धूप में,
कोई था ग़मग़ीन छाँव में,
महलों से कुटियों तक दुख की
थी हर सुख से रिश्तेदारी,

ओ हर खेल खिलाने वाले! ओ हर रास रचाने वाले!
घुने खिलौने थे तेरे तो गुड़ियों को बचपन मत देता!
ओ हर सुबह जगाने वाले...

गीले सब रूमाल, अश्रु की
पनिहारिन हर एक उमर थी
शबनम की बूँदों तक पर
निर्दयी धूप की कड़ी नज़र थी,

निरवंशी थे स्वप्न, दर्द से
मुक्त न था कोई भी अंचल,
कुछ के चोट लगी थी बाहर,
कुछ के चोट लगी भीतर थी,

ओ बरसात बुलाने वाले! ओ बादल बरसाने वाले!
आँसू इतने प्यार थे तो मौसम को सावन मत देता!
ओ हर सुबह जगाने वाले...

भूख फली थी यूँ गलियों में,
ज्यों फूले यौवन कनेर का,
बीच ज़िन्दगी और मौत के
सिर्फ़ फ़ासला था मुँडेर का,

मज़बूरी इस क़दर बहारों
में गानेवाली बुलबुल को,
दो दानों के लिए कीर्तन
करना पड़ता था कुबेर का

ओ पालना झुलाने वाले! ओ हर पलँग बिछाने वाले!
जीना इतना मुश्किल था तो सुख के लाख सपन मत देता!
ओ हर सुबह जगाने वाले...

यूँ चलती थी हाट कि बिकते
फूल, दाम पाते थे माली,
दीपों से ज़्यादा अमीर थी,
उँगली दीप बुझाने वाली,

और यहीं तक नहीं, आड़,
लेकर सोने के सिंहासन की
पूनम को बदचलन बताती
थी मावस की रजनी काली,

ओ हर बाग़ लगाने वाले! ओ हर नीड़ बसाने वाले!
इतना था अन्याय यहाँ तो मुझे विनम्र वचन मत देता!
ओ हर सुबह जगाने वाले...

क्या अजीब थी प्यास कि
अपनी उमर पी रहा था हर प्याला,
जीने की कोशिश में मरता
जाता था हर जीने वाला,

कहने को सब थे सम्बन्धी
लेकिन थे आँधी के पत्ते
जब तक हों परिचित आपस में
मुरझा जाती थी हर माला,

ओ हर चित्र बनाने वाले! ओ हर रंग रँगाने वाले!
झूठी थीं तस्वीरें सब तो यौवन को दर्पण मत देता!!
ओ हर सुबह जगाने वाले...

सुबह चले, शाम चले

सुबह चले, शाम चले,
नगर - डगर, ग्राम चले,
ज़िन्दगी सफ़र है एक भारी।

जितने पल हैं प्यार करो
हर तरह सिंगार करो -
जाने कब हो कूच की तैयारी!

प्यार में गुज़र गया जो पल वह
पूरी एक सदी से कम नहीं है,
जो विदा के क्षण नयन से छलका
अश्रु वो नदी से कम नहीं है,

लाज से न यूँ लजाओ
आओ मेरे पास आओ
माँग भरूँ फूलों से तुम्हारी

जितने पल हैं प्यार करो,
हर तरह सिंगार करो,
जाने कब हो कूच की तैयारी!

बेहिसाब साँस के सफ़र में
प्यार की कहानी रात भर की है
दर्द की अँधेरी सूनी राहों पर
रूप की जवानी रात भर की है

स्वप्न नयन में सजाओ
मेंहदी प्रीति की रचाओ,
रह न जाये कोई साध क्वाँरी,

जितने पल हैं प्यार करो
हर तरह सिंगार करो
जाने कब हो कूच की तैयारी!

कौन जाने कल इसी जगह पर
तुम हो, हम हों, पर न यह नज़र हो
चाँद, चाँदनी, यह यामिनी हो
पास होंठ के मगर ज़हर हो,

चाँदनी पियो पिलाओ
राग - रस में डूब जाओ
टूटे नहीं रात की खुमारी

जितने पल हैं प्यार करो
हर तरह सिंगार करो
जाने कब हो कूच की तैयारी!

जो अभी था साथ हमने देखा
नभ में वो सितारा अब नहीं है,
शाम था हसीन जितना मौसम
वक्त उतना प्यारा अब नहीं है,

कौन तुम हो भूल जाओ,
कौन मैं हूँ भूल जाओ,
एक पल बना लो उम्र सारी,

जितने पल हैं प्यार करो
हर तरह सिंगार करो
जाने कब हो कूच की तैयारी!

जिसने है मिलाया आज हमको
वह न हम हैं, शक्ति और कोई
चाहेगा नहीं अगर वही कल
विष बनेगी प्रीति की रसोई

जीत - हार को बनाओ
साथ कोई गीत गाओ
वक्त है बहुत बड़ा खिलाड़ी

जितने पल हैं प्यार करो,
हर तरह सिंगार करो
जाने कब हो कूच की तैयारी!

इसीलिए तो

इसीलिए तो नगर-नगर बदनाम हो गये मेरे आँसू
मैं उनका हो गया कि जिनका कोई पहरेदार नहीं था!

जिनका दुख लिखने की ख़ातिर
मिली न इतिहासों को स्याही,
क़ानूनों को नाख़ुश करके
मैंने उनकी भरी गवाही

जले उमर-भर फिर भी जिनकी
अर्थी उठी अँधेरे में ही,
ख़ुशियों की नौकरी छोड़कर
मैं उनका बन गया सिपाही

रस-लोभी आलोचक कैसे करता दर्द पुरस्कृत मेरा
मैंने जो कुछ गाया उसमें करुणा थी, शृंगार नहीं था!
इसीलिए तो...

मैंने चाहा नहीं कि कोई
आकर मेरा दर्द बँटाये,
बस यह ख़्वाहिश रही कि-
मेरी उमर ज़माने को लग जाये,

चमचम चूनर-चोली पर तो
लाखों ही थे लिखने वाले,
मेरी मगर ढिठाई मैंने
फटी कमीज़ों के गुन गाये,

इसका ही यह फल है शायद कल जब मैं निकला दुनिया में
तिल-भर ठौर मुझे देने को मरघट तक तैयार नहीं था!
इसीलिए तो...

कोशिश भी की किन्तु हो सका
मुझ से यह न कभी जीवन में
इसका साथी बनूँ जेठ में
उसमें प्यार करूँ सावन में

जिसको भी अपनाया उसकी
याद सँजोई मन में ऐसे
कोई साँझ सुहागिन दीवा
बाले ज्यों तुलसी-पूजन में,

फिर भी मेरे स्वप्न मर गये अविवाहित केवल इस कारण
मेरे पास सिर्फ़ कुंकुम था, कंगन पानीदार नहीं था।

इसीलिए तो...

दोषी है तो बस इतनी ही
दोषी है मेरी तरुणाई,
अपनी उमर घटाकर मैंने
हर आँसू की उमर बढ़ाई,

और गुनाह किया है कुछ तो
इतना सिर्फ़ गुनाह किया है,
लोग चले जब राजभवन को
मुझको याद झोंपड़ी आई,

आज भले कुछ भी कह लो तुम, पर कल विश्व कहेगा सारा
नीरज से पहले गीतों में सब कुछ था, पर प्यार नहीं था।

इसीलिए तो...

प्यार की कहानी चाहिए

आदमी को आदमी बनाने के लिए
ज़िन्दगी में प्यार की कहानी चाहिए
और कहने के लिए कहानी प्यार की
स्याही नहीं, आँखोंवाला पानी चाहिए।

जो भी कुछ लुटा रहे हो तुम यहाँ
वो ही बस तुम्हारे साथ जायेगा,
जो छुपा के रक्खा है तिजोरी में
वो तो धन न कोई काम आयेगा,
सोने का ये रंग छूट जाना है
हर किसी का संग छूट जाना है
आख़िरी सफ़र के इन्तज़ाम के लिए
जेब भी कफ़न में इक लगानी चाहिए।

आदमी को आदमी...

रागिनी है एक प्यार की
ज़िन्दगी कि जिसका नाम है
गाके गर कटे तो है सुबह
रोके गर कटे तो शाम है
शब्द और ज्ञान व्यर्थ है
पूजा-पाठ ध्यान व्यर्थ है
आँसुओं को गीतों में बदलने के लिए
लौ किसी यार से लगानी चाहिए।

आदमी को आदमी...

जो दुखों में मुस्कुरा दिया
वो तो इक गुलाब बन गया
दूसरों के हक़ में जो मिटा
प्यार की किताब बन गया,

आग और अंगारा भूल जा
तेग़ और दुधारा भूल जा
दर्द को मशाल में बदलने के लिए
अपनी सब जवानी ख़ुद जलानी चाहिए।

आदमी को आदमी...

दर्द गर किसी का तेरे पास है
वो ख़ुदा तेरे बहुत क़रीब है
प्यार का जो रस नहीं है आँखों में
कैसा हो अमीर तू ग़रीब है
खाता और बही तो रे बहाना है
चैक और सही तो रे बहाना है
सच्ची साख मंडी में कमाने के लिए
दिल की कोई हुंडी भी भुनानी चाहिए।

आदमी को आदमी...

अपनी बानी प्रेम की बानी

अपनी बानी प्रेम की बानी
घर समझे न गली समझे
या इसे नन्द-लाल समझे जी,
या इसे बृज की लली समझे!

हिन्दी नहीं ये, उर्दू नहीं ये।
है ये पिया की क़सम,
इसकी सियाही आँखों का पानी,
दर्द की इसकी क़लम,
लागे किसी को मिसरी-सी मीठी
कोई नमक की डली समझे।

अपनी बानी प्रेम की बानी...

इसकी अदा पर मर गई मीरा,
मोहे दास कबीर,
अँधरे सूर को आँखें मिल गईं
खाकर इसका तीर,
चोट लगे तो कली समझे इसे
सूली चढ़े तो अली समझे।

अपनी बानी प्रेम की बानी...

बोली यही तो बोले पपीहा
घुमड़ें कि जब घनश्याम,
जल जाये दीपक पै पतंगा
लेके इसी का नाम,
पंछी इसे असली समझे पर
पिंजरा इसे नकली समझे!

अपनी बानी प्रेम की बानी...

सूरज की गर्मी, चन्दा की ठंडक,
इसमें अनन्त बसन्त,
अपढ़ पढ़े बन जाये पंडित,
ज्ञानी पढ़े हो सन्त,
बिन नैया के पार हुए वे
इसको जो मुक्ति-मिली समझे!

अपनी बानी प्रेम की बानी...

जिसने इसे होंठों पै बिठाया,
हो गया वो बेदीन,
तड़पा उमर-भर ऐसे कि जैसे
तड़पे बिना जल मीन,
बुद्धि इसे पगली समझे पर
मन रस की बदली समझे!

अपनी बानी प्रेम की बानी...

अर्थों में ध्वनि ये, ग्रंथों में गीता,
वेदों में है रस-वेद,
इक धागे में सब को पिरोये
भेदों में बन के अभेद,
यह है समर्पण, यह है विसर्जन
कैसे इसे रे छली समझे!

अपनी बानी प्रेम की बानी...

मस्ती के बन की है ये हिरनिया
घूमे सदा निर्द्वन्द्व,
रस्सी से इसको बाँधो न साधो!
घर में करो ना बन्द
हम जो अरथ समझे इसका तो
फूँक के बाती जली समझे!

अपनी बानी प्रेम की बानी...

आँसू जब सम्मानित होंगे

आँसू जब सम्मानित होंगे मुझ को याद किया जायेगा
जहाँ प्रेम का चर्चा होगा मेरा नाम लिया जायेगा।।

मान-पत्र मैं नहीं लिख सका
राजभवन के सम्मानों का
मैं तो आशिक़ रहा जनम से
सुन्दरता के दीवानों का
लेकिन था मालूम नहीं ये
केवल इस ग़लती के कारण
सारी उम्र भटकने वाला
मुझ को शाप दिया जायेगा।
आँसू जब सम्मानित होंगे।

खिलने को तैयार नहीं थी
तुलसी भी जिनके आँगन में
मैंने भर - भर दिये सितारे
उनके मटमैले दामन में
पीड़ा के संग रास रचाया
आँख भरी तो झूम के गाया
जैसे मैं जी लिया किसी से
क्या इस तरह जिया जायेगा।
आँसू जब सम्मानित होंगे।

काज़ल और कटाक्षों पर तो
रीझ रही थी दुनिया सारी
मैंने किन्तु बरसने वाली
आँखों की आरती उतारी
रंग उड़ गये सब सतरंगी
तार - तार हर साँस हो गई

फटा हुआ यह कुर्ता अब तो
ज़्यादा नहीं सिया जायेगा।
आँसू जब सम्मानित होंगे।

जब भी कोई सपना टूटा
मेरी आँख वहाँ बरसी है
तड़पा हूँ मैं जब भी कोई
मछली पानी को तरसी है,
गीत दर्द का पहला बेटा
दुख है उसका खेल खिलौना
कविता तब मीरा होगी
जब हँसकर ज़हर पिया जायेगा।
आँसू जब सम्मानित होंगे।

विदा-क्षण आ पहुँचा

जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की
तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा!

फूटे भी तो थे बोल न श्वास कुमारी के
गीतों वाला इकतारा गिरकर टूट गया,
हो भी न सका था परिचय दृग का दर्पन से
काजल आँसू बनकर छलका औ' छूट गया,

तन भीगा, मन भीगा, कण-कण, तृण-तृण भीगा,
देहरी-द्वारा, आँगन-उपवन, त्रिभुवन भीगा,
जब तक मैं दीप जलाऊँ कुटिया के द्वारे
तब तक बरसात मचाता सावन आ पहुँचा!

> जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की
> तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा!

रह गये धरे के धरे ताख में ज्ञान-ग्रन्थ,
छुट गई बँधी की बँधी रतनवाली गठरी
लुट गई सजी की सजी रूप की हाट और
देखती खड़ी की खड़ी रही सिगरी नगरी,

कुछ ऐसी लूट मची जीवन चौराहे पर,
ख़ुद को ही ख़ुद लूटने लगा हर सौदागर,
औ' जब तक कोई आए हमको समझाए
तब तक भुगताने ब्याज महाजन आ पहुँचा!

> जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की
> तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा!

आँसू ने दी आवाज़ तनिक रुक निर्मोही,

सिन्दूर तड़प बोला अब कहाँ मिलन होगा,
अलकों ने कहा ज़रा यह लट तो सहला जा
क्या ठीक कि सपनों का गौना किस दिन होगा!

सिंगार सिसकता रहा, बिलखता रहा हिया,
दुहरात रहा गगन से चातक 'पिया पिया',
पर जब तक कोई टेर कहीं पहुँचे तब तक
हर कोलाहल का हल सूनापन आ पहुँचा!

जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जन के मन की
तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा!

बाँहों ने बाँहों को बढ़कर छूना चाहा,
अधरों ने अधरों से मिलने को शोर किया,
आँखें आँखों में खो जाने को मचल पड़ीं
प्राणों ने प्राणों के हित तन झकझोर दिया,

सब ने खींचातानी की, आनाकानी की,
अपनी-अपनी कमज़ोरी की अगवानी की,
पर जब तक पहुँचे प्यास तृप्ति के दरवाज़े
तब तक प्याले का अमृत गरल बन आ पहुँचा!

जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की
तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा!

कल सुबह एक मनिहारिन मेले में बैठी
थी बेच रही चूड़ियाँ हज़ारों चालों की,
इकरंगी-दोरंगी, भाँवर की, गौने की
ब्याही अनब्याही तभी कलाई वालों की,

कौतूहलवश मैंने भी चाहा, मैं अपनी
घरनी के लिए ले चलूँ चूड़ी सितवर्णी,
पर जब तक मैं कुछ मोल करूँ उससे तब तक
ख़ुद मुझे खोजता कोई कंगन आ पहुँचा!

जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की
तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा!

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के!

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के!
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर!

बाँसुरी से बिछुड़ जो गया स्वर उसे
भर लिया कंठ में शून्य आकाश ने,
डाल विधवा हुई जो कि पतझार में
माँग उसकी भरी मुग्ध मधुमास ने,

हो गया कूल नाराज़ जिस नाव से
पा गई प्यार वह एक मझधार का
बुझ गया जो दिया भोर में दीन-सा
बन गया रात सम्राट अँधियार का,

जो सुबह रंक था, शाम राजा हुआ
जो लुटा आज कल फिर बसा भी वही,
एक मैं ही कि जिसके चरण से धरा
रोज तिल-तिल धसकती रही उम्र भर!

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के!
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर!

प्यार इतना किया ज़िन्दगी में कि जड़—
मौन तक मरघटों का मुखर कर दिया,
रूप-सौन्दर्य इतना लुटाया कि हर
भिक्षु के हाथ पर चन्द्रमा धर दिया,

भक्ति-अनुरक्ति ऐसी मिली, सृष्टि की
शक्ल हर एक मेरी तरह हो गई,
जिस जगह आँख मूँदी निशा आ गई,
जिस जगह आँख खोली सुबह हो गई,

किन्तु इस राग-अनुराग की राह पर
वह न जाने रतन कौन-सा खो गया?
खोजती-सी जिसे दूर मुझसे स्वयं
आयु मेरी खिसकती रही उम्र भर!

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के!
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर!

वेश भाए न जाने तुझे कौन-सा?
इसलिए रोज़ कपड़े बदलता रहा,
किस जगह कब कहाँ हाथ तू थाम ले
इसलिए रोज़ गिरता सँभालता रहा,

कौन-सी मोह ले तान तेरा हृदय
इसलिए गीत गाया सभी राग का,
छेड़ दी रागिनी आँसुओं की कभी
शंख फूँका कभी क्रान्ति का, आग का,

किस तरह खेल क्या खेलता तू मिले
खेल खेले इसी से सभी विश्व के
कब न जाने करे याद तू इसलिए
याद कोई कसकती रही उम्र भर!

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के!
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर!!

रोज़ ही रात आई गई, रोज ही
आँख झपकी मगर नींद आई नहीं,
रोज़ ही हर सुबह, रोज़ ही हर कली
खिल गई तो मगर मुस्कुराई नहीं,

नित्य ही रास ब्रज में रचा चाँद ने
पर न बाजी बँसुरिया कभी श्याम की
हर तरह उर-अयोध्या बसाई गई
याद भूली न लेकिन किसी राम की

हर जगह ज़िन्दगी में लगी कुछ कमी
हर समय आँसुओं में नहाई मिली,

हर हँसी, हर घड़ी, भूमि से स्वर्ग तक
आग कोई दहकती रही उम्र भर!

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के!
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर!!

खोजता ही फिरा पर अभी तक मुझे
मिल सका कुछ न तेरा ठिकाना कहीं,
ज्ञान से बात की तो कहा बुद्धि ने—
'सत्य है वह मगर आज़माना नहीं,'

धर्म के पास पहुँचा पता यह चला
मन्दिरों-मस्जिदों में अभी बन्द है,
जोगियों ने जताया कि जप-जोग है,
भोगियों ने सुना भोग-आनन्द है,

किन्तु पूछा गया नाम जब प्रेम से
धूल से वह लिपट फूटकर रो पड़ा,
बस तभी से व्यथा देख संसार की
आँख मेरी छलकती रही उम्र-भर!

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के!
साँस मेरी सिसकती रही उम्र-भर!

विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है...

विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है,
किसे याद कर लूँ, किसे भूल जाऊँ?

विरहिणी थकी नींद तो चाहती है
अभी और कुछ देर ठहरे अँधेरा,
मगर ज्वाल-जोगी दिये की लगन है
कि हो आज पहले सुबह से सबेरा,

इसी द्वन्द्व में मैं पड़ा सोचता हूँ
कि सूरज जगाऊँ कि चन्दा बुलाऊँ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है,
किसे याद कर लूँ, किसे भूल जाऊँ?

सिसक साँस कहती यहाँ रोज़ मुझसे
कि मिट्टी मिटाए मुझे जा रही है,
मगर देखता हूँ उधर बाग़ में तो
कली धूल में खिल रही, गा रही है,

दुरंगे नगर की दुरंगी डगर पर
कहाँ बैठ रोऊँ, कहाँ बैठ गाऊँ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है,
किसे याद कर लूँ, किसे भूल जाऊँ?

जनम से मरण की शिकायत यही है
“कि जीवन नहीं मानता हुक्म मेरा,”
कफ़न ने सदा ही कहा किन्तु रोकर
“कि है मौत से बस न मेरा न तेरा,”

सृजन-नाश के दो क्षणों से बँधा मैं
जनम पर हँसूँ या मरण पर रिझाऊँ?

विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है
किसे याद कर लूँ, किसे भूल जाऊँ?

बस मुत्तिका-पुतलियों में सपन जो
छुआ धूप ने तो किरण बन गया वह
लिया चूम जो चाँद ने भूल से तो
गिरा आँख से ओस कन बन गया वह,

तुम्हीं फिर कहो स्वप्न के द्वार पर मैं
अँगारे बिछाऊँ कि तारे टँकाऊँ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है,
किसे याद कर लूँ, किसे भूल जाऊँ?

सुबह धूप का रूप घूँघट सजाए
जहाँ देखता था लगा फूल-मेला,
वहीं शाम अब ओढ़ चादर धुएँ की
पड़ा रो रहा एक पतझर अकेला,

‘सुबह-शाम बन ढल रही ज़िन्दगी को’
कि रोकर सुलाऊँ, कि हँसकर जगाऊँ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है
किसे याद कर लूँ, किसे भूल जाऊँ?

उषा जो सुबह हाथ मेंहदी रचाती
उसे पोंछ देता सदा सान्ध्य-तारा,
लगाती निशा भाल जो चन्द्र-टीका
उसे चाट जाता दिवस का अँगारा,

इसी भाँति मैं भी स्वयं मिट रहा जब
किसे फिर बनाऊँ किसे फिर मिटाऊँ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है,
किसे याद कर लूँ किसे भूल जाऊँ

किसी एक तूफ़ान वाली लहर ने
दिया था मुझे फेंक कल इस किनारे,
लहर पर वही अब बिना कुछ बताए
लिए जा रही है मुझे उस किनारे,

समय-सिन्धु में एक तृण हूँ, पता क्या
कहाँ डूब जाऊँ, कहाँ पार जाऊँ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है,
किसे याद कर लूँ, किसे भूल जाऊँ?

आज जी भर देख लो तुम चाँद को...

आज जी भर देख लो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए!

दे रहे लौ स्वप्न भीगी आँख में
तैरती हो ज्यों दिवाली धार पर,
होंठ पर कुछ गीत की लड़ियाँ पड़ीं
हँस पड़े जैसे सुबह पतझार पर

पर न यह मौसम रहेगा देर तक
हर घड़ी मेरा बुलावा आ रहा,
कुछ नहीं अचरज अगर कल ही यहाँ
विश्व मेरी धूल तक पाए न पाए

आज जी भर देख लो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए!

ठीक क्या किस वक्त उठ जाए क़दम
काफ़िला कर कूच दे इस ग्राम से
कौन जाने कब मिटाने को थकन
जा सुबह माँगे उजाला शाम से,

काल के अद्वैत अधरों पर धरी
ज़िन्दगी यह बाँसुरी है चाम की
क्या पता कल श्वास के स्वरकार को
साज़ यह, आवाज़ यह भाए न भाए!

आज जी भर देख लो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए!

यह सितारों से जड़ा नीलम-नगर

बस तमाशा है सुबह की धूप का,
यह बड़ा-सा मुस्कुराता चन्द्रमा
एक दाना है समय के सूप का,

है नहीं आज़ाद कोई भी यहाँ
पाँव में हर एक के ज़ंजीर है
जन्म से ही जो पराई है मगर
साँस का क्या ठीक कब गाए न गाए!

आज जी भर देख लो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए!

स्वप्न-नयना इस कुमारी नींद का
कौन जाने कल सबेरा हो न हो,
इस दिये की गोद में इस ज्योति का
इस तरह फिर से बसेरा हो न हो!

चल रही है पाँव के नीचे धरा
और सर पर घूमता आकाश है
धूल तो सन्यासिनी है सृष्टि से
क्या पता वह कल कुटी छाए न छाए!

आज जी भर देख लो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए!

हाट में तन की पड़ा मन का रतन
कब बिके किस दाम पर अज्ञात है,
किस सितारे की नज़र किसको लगे
ज्ञात दुनिया में किसे यह बात है!

है अनिश्चित हर दिवस, हर एक क्षण
सिर्फ़ निश्चित है अनिश्चितता यहाँ
इसलिए सम्भव बहुत है, प्राण! कल
चाँद आए, चाँदनी लाए न लाए!

आज जी भर देख लो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए!

यदि वाणी भी मिल जाए दर्पण को

सुन्दरता ख़ुद से ही शरमा जाए
यदि वाणी भी मिल जाए दर्पण को!

खूबसूरत है हर फूल मगर उसका
कब मोल चुका पाया है सब मधुबन?
जब प्रेम समर्पण देता है अपना
सौन्दर्य तभी करता है निज दर्शन,
अर्पण है सृजन और रूपान्तर भी,
पर अन्तर-योग बिना है नश्वर भी,
सच कहता हूँ हर मूरत बोल उठे
दो अश्रु हृदय दे दे यदि पाहन को!

सुन्दरता ख़ुद से ही शरमा जाए
यदि वाणी भी मिल जाए दर्पण को!

सौ बार भरी गगरी आ बादल ने
प्यासी पुतली यह किन्तु रही प्यासी,
साँसों ने जाने कैसा शाप दिया
बन गई देह हर मरघट की दासी

दुख ही दुख है जग में सब ओर कहीं,
लेकिन सुख का यह कहना झूठ नहीं,
'सब की सब सृष्टि खिलौना बन जाये
यदि नज़र उमर की लगे न बचपन को!

सुन्दरता ख़ुद से ही शरमा जाए
यदि वाणी भी मिल जाए दर्पण को!

रुक पाई अपनी हँसी न कलियों से
दुनिया ने लूट इसी से ली बगिया

इस कारण कालिख मुख पर मली गई
बदशक्ल रात पर मरने लगा दिया,

तुम उसे गालियाँ दो, कुछ बात नहीं
लेकिन शायद तुमको यह ज्ञात नहीं,
आदमी देवता ही होता जग में
भावुकता अगर न मिलती यौवन को!

सुन्दरता ख़ुद से ही शरमा जाए
यदि वाणी भी मिल जाए दर्पण को!

है धूल बहुत नाचीज़ मगर मिटकर
दे गई रूप अनगिन प्रतिमाओं को,
पहरेदारी में किसी घोंसले की
तिनके ने रक्खा क़ैद हवाओं को,

निर्धन दुर्बल है, सब का नौकर है
और धन हर मठ-मन्दिर का ईश्वर है
लेकिन मुश्किलें बहुत कम हो जायें
यदि कंचन कहे ग़रीब न रजकण को!

सुन्दरता ख़ुद से ही शरमा जाए
यदि वाणी भी मिल जाए दर्पण को!

चन्दन की छाँव रहे विषधर लेकिन
मर पाया ज़हर न उनके बोलों का,
पर पिया-पिया का राग पपीहे का
आ सिखला गया वियोग बादलों का,

चाहे सागर को कंगन पहनाओ-
चाहे नदियों की चूनर सिलवाओ,
उतरेगा स्वर्ग तभी इस धरती पर
जब प्रेम लिखेगा ख़त परिवर्तन को!

सुन्दता ख़ुद से ही शरमा जाए
यदि वाणी भी मिल जाए दर्पण को!

कोई मोती गूँथ सुहागिन!

कोई मोती गूँथ सुहागिन! तू अपने गलहार में
मगर बिदेसी रूप न बँधने वाला है सिंगार में!

एक हवा का झोंका जीवन, दो क्षण का मेहमान है,
अरे ठहरना कहाँ, यहाँ गिरवी हर एक मकान है,
व्यर्थ सुनहरी धूप और यह व्यर्थ रूपहरी चाँदनी
हर प्रकाश के साथ किसी अँधियारे की पहचान है,
चमकीली चोली-चुनरी पर मत इतरा यूँ साँवरी।
सब को चादर यहाँ एक सी मिलती चलती बार में!

कोई मोती गूँथ सुहागिन! तू अपने गलहार में
मगर बिदेसी रूप न बँधने वाला है सिंगार में!

ये गुलाब से गाल इन्हें ऋण देना है पतझार का,
चढ़ती हुई उमर पर पानी है मौसमी फुहार का,
अधरों की यह वंशी जो चुम्बन के गीत सुना रही
होगी कल ख़ामोश उठेगा डोला जब उस पार का,
दर्पण में मुख देख-देख मत अपनी छवि पर रीझ यूँ
पड़ती जाती है दरार छिन-छिन तन की दीवार में!

कोई मोती गूँथ सुहागिन! तू अपने गलहार में
मगर बिदेसी रूप न बँधने वाला है सिंगार में!

श्यामल यमुना से केशों में गंगा करती वास है,
भोगी अंचल की छाया में सिसक रहा संन्यास है,
म्हावर-मेंहदी, काजल-कंघी गर्व तुझे जिन पर बड़ा
मुट्ठीभर मिट्टी ही केवल इन सब का इतिहास है,
नटखट लट का नाग जिसे तू भाल बिठाये घूमती
अरी! एक दिन तुझ को ही डस लेगा भरे बज़ार में!

कोई मोती गूँथ सुहागिन! तू अपने गलहार में
मगर विदेसी रूप न बँधने वाला है सिंगार में!

कल जिस ठौर खड़ी थी दुनिया आज नहीं उस ठाँव है,
जिस आँगन थी धूप सुबह, उस आँगन में अब छाँव है,
प्रतिपल नूतन जन्म यहाँ पर प्रतिपल नूतन मृत्यु है,
देख आँख मलते-मलते ही बदल गया सब गाँव है,
रूप-नदी-तट तू क्या अपना मुखड़ा मल-मल धो रही
है न दूसरी बार नहाना संभव बहती धार में!

कोई मोती गूँथ सुहागिन! तू अपने गलहार में
मगर बिदेसी रूप न बँधने वाला है सिंगार में!

जब तक डूबे सूर्य सबेरा ब्याहा जाए शाम से,
तब तक गोरी माथे बिंदिया जड़ ले तू आराम से,
मुँदते ही पलकें सूरज की उठते ही दिन की सभा
सब को फुरसत यहाँ मिलेगी अपने-अपने काम से,
बहक उठा है चाँद और वह महक उठी है चाँदनी
देख प्यार की रितु न बीत जाए इस भरी बहार में!

कोई मोती गूँथ सुहागिन! तू अपने गलहार में
मगर बिदेसी रूप न बँधने वाला है सिंगार में!

अधिकार सब का है बराबर

फूल पर हँसकर अटक तो, शूल को रोकर झटक मत,
ओ पथिक! तुझ पर यहाँ अधिकार सब का है बराबर!

बाग़ है ये: हर तरह की वायु का इस में गमन है,
एक मलयज की वधू तो एक आँधी की बहन है,
यह नहीं मुमकिन कि मधुऋतु देख तू पतझर न देखे,
क़ीमती कितनी कि चादर हो पड़ी सब पर शिकन है,
दो बरन के सूत की माला प्रकृति है, किन्तु फिर भी-
एक कोना है जहाँ शृँगार सब का है बराबर!

फूल पर हँसकर अटक तो, शूल को रोकर झटक मत,
ओ पथिक! तुझ पर यहाँ अधिकार सब का है बराबर!

कोस मत उस रात को जो पी गई घर का सवेरा,
रूठ मत उस स्वप्न से जो हो सका जग में न तेरा,
खीज मत उस वक्त पर, दे दोष मत उन बिजलियों को-
जो गिरीं तब-तब कि जब-जब तू चला करने बसेरा,
सृष्टि है शतरंज औ’ हैं हम सभी मोहरे यहाँ पर
शाह हो पैदल कि शह पर वार सब का है बराबर!

फूल पर हँसकर अटक तो, शूल को रोकर झटक मत,
ओ पथिक! तुझ पर यहाँ अधिकार सब का है बराबर!

है अदा यह फूल की छूकर उँगलियाँ रूठ जाना,
स्नेह है यह शूल का चुभ उम्र छालों की बढ़ाना,
मुश्किलें कहते जिन्हें हम राह की आशीष है वो
और ठोकर नाम है - बेहोश पग को होश आना,
एक ही केवल नहीं, हैं प्यार के रिश्ते हज़ारों
इसलिए हर अश्रु को उपहार सब का है बराबर!

फूल पर हँसकर अटक तो, शूल को रोकर झटक मत,
ओ पथिक! तुझ पर यहाँ अधिकार सब का है बराबर!

देख मत तू यह कि तेरे कौन दाएँ कौन बाएँ,
तू चलाचल बस कि सब पर प्यार की करता हवाएँ,
दूसरा कोई नहीं, विश्राम है दुश्मन डगर पर,
इसलिए जो गालियाँ भी दे उसे तू दे दुआएँ,
बोल कड़ुवे भी भुला दे, गीत मैले भी धुला ले,
क्योंकि बगिया के लिए गुंजार सब का बराबर!

फूल पर हँसकर अटक तो, शूल को रोकर झटक मत,
ओ पथिक! तुझ पर यहाँ अधिकार सब का है बराबर!

एक बुलबुल का जला कल आशियाना जब चमन में,
फूल मुस्काते रहे, छलका न पानी तक नयन में,
सब मगन अपने भजन में, था किसी को दुख न कोई,
सिर्फ़ कुछ तिनके पड़े सिर धुन रहे थे उस हवन में,
हँस पड़ा मैं देख यह तो एक झरता पात बोला-
“हो मुखर या मूक हाहाकार सब का है बराबर!”

फूल पर हँसकर अटक तो, शूल को रोकर झटक मत,
ओ पथिक! तुझ पर यहाँ अधिकार सब का है बराबर!

मुहूरत निकल जाएगा

देखती ही न दर्पण रहो प्राण! तुम
प्यार का यह मुहूरत निकल जायेगा।

साँस की तो बहुत तेज़ रफ़्तार है,
और छोटी बहुत है मिलन की घड़ी,
आँजते - आँजते ही नयन बावरे,
बुझ न जाये कहीं रूप की फुलझड़ी,

सब मुसाफिर यहाँ, सब सफर पर यहाँ,
ठहरने की इजाज़त किसी को नहीं,
केश ही तुम न बैठी गुँथती रहो,
देखते-देखते चाँद ढल जायेगा।

देखती ही न दर्पण रहो प्राण! तुम
प्यार का यह मुहूरत निकल जायेगा।

झूमती गुनगुनाती हुई यह हवा,
कौन जाने कि तूफ़ान के साथ हो,
क्या पता इस निदासे गगन के तले
यह हमारे लिए आखिरी रात हो,

ज़िन्दगी क्या-समय के बियाबान में
एक भटकी हुई फूल की गंध है,
चूड़ियाँ ही न तुम खनखनाती रहो,
कल दिये को सबेरा निगल जायेगा।

देखती ही न दर्पण रहो प्राण! तुम
प्यार का यह मुहूरत निकल जायेगा।

यह महकती निशा, यह बहकती दिशा,

कुछ नहीं है, शरारत किसी शाम की,
चाँदनी की चमक, दीप की यह दमक,
है हँसी बस किसी एक बेनाम की,

है लगी होड़ दिन-रात में प्रिय! यहाँ
धूप के साथ लिपटी हुई छाँह है,
वस्त्र ही तुम बदलकर न आती रहो,
यह शरमसार मौसम बदल जायेगा।

देखती ही न दर्पण रहो प्राण! तुम
प्यार का यह मुहूरत निकल जायेगा।

होंठ पर जो सिसकते पड़े गीत ये,
एक आवाज़ के सिर्फ़ मेहमान हैं,
ऊँघती पुतलियों में जड़े जो सपन,
वे किन्हीं आँसुओं से मिले दान हैं,

कुछ न मेरा न कुछ है तुम्हारा यहाँ
कर्ज़ के ब्याज पर सिर्फ़ हम जी रहे,
माँग ही तुम न बैठी सजाती रहो,
आ गया जो महाजन न टल पायेगा।

देखती ही न दर्पण रहो प्राण! तुम
प्यार का यह मुहूरत निकल जायेगा।

कौन शृँगार पूरा यहाँ कर सका?
सेज जो भी सजी सो अधूरी सजी,
हार जो भी गुँथा सो अधूरा गुँथा,
बीन जो भी बजी सो अधूरी बजी,

हम अधूरे, अधूरा हमारा सृजन,
पूर्ण तो एक प्रेम ही है यहाँ,
काँच से ही न नज़रें मिलाती रहो,
बिम्ब को मूक प्रतिबिम्ब छल जायेगा।

देखती ही न दर्पण रहो प्राण! तुम
प्यार का यह मुहूरत निकल जायेगा।

दिया जलता रहा...

"जी उठे शायद शलभ इस आस में
रात-भर रो-रो दिया जलता रहा।"

थक गया जब प्रार्थना का पुण्य-बल,
सो गई जब साधना होकर विफल,
जब धरा ने भी नहीं धीरज दिया,
व्यंजन जब आकाश ने हँसकर किया,
आग तब पानी बनाने के लिए-
रात-भर रो-रो दिया जलता रहा।

"जी उठे शायद शलभ इस आस में
रात-भर रो-रो दिया जलता रहा।"

बिजलियों का चीर पहने थी दिशा,
आँधियों के पर लगाये थी निशा,
पर्वतों की बाँह पकड़े था पवन,
सिन्धु को सिर पर उठाये था गगन,
सब रुके, पर प्रीति की अर्थी लिये
आँसुओं का कारवाँ चलता रहा।

"जी उठे शायद शलभ इस आस में
रात-भर रो-रो दिया जलता रहा।"

काँपता तम, थरथराती लौ रही,
आग अपनी भी न जाती थी सही,
लग रहा था कल्प-सा हर एक पल
बन गई थीं सिसकियाँ साँसें विकल,
पर न जाने क्यों उमर की डोर में
प्राण बँध तिल-तिल सदा गलता रहा?

“जी उठे शायद शलभ इस आस में
रात-भर रो-रो दिया जलता रहा।”

सो मरण की नींद निशि फिर-फिर जगी,
शूल के शव पर कली फिर-फिर उगी,
फूल मधुपों से बिछड़कर भी खिला,
पंथ पंथी से भटक कर भी चला,
पर पिछड़ कर एक क्षण को जन्म से
आयु का यौवन सदा ढलता रहा।

“जी उठे शायद शलभ इस आस में
रात-भर रो-रो दिया जलता रहा।”

धूल का आधार हर उपवन लिये,
मृत्यु से शृँगार हर जीवन किये,
जो अमर है वह न धरती पर रहा,
मर्त्य का ही भार मिट्टी ने सहा,
प्रेम को अमरत्व देने को मगर,
आदमी ख़ुद को सदा छलता रहा।

“जी उठे शायद शलभ इस आस में
रात-भर रो-रो दिया जलता रहा।”

नहीं मिला...

सुख के साथी मिले हज़ारों ही लेकिन,
दुख में साथ निभाने वाला नहीं मिला।

जब तक रही बहार उमर की बगिया में,
जो भी आया द्वार, चाँद लेकर आया,
पर जिस दिन झर गई गुलाबों की पँखुरी,
मेरा आँसू मुझ तक आते शरमाया,
जिसने चाहा मेरे फूलों को चाहा,
नहीं किसी ने लेकिन शूलों को चाहा,
मेला साथ दिखाने वाले मिले बहुत,
सूनापन बहलाने वाला नहीं मिला।

सुख के साथी...

कोई रंग-बिरंगे कपड़ों पर रीझा,
मोहा कोई मुखड़े की गोराई से,
लुभा किसी को गयी कंठ की कोयलिया,
उलझा कोई केशों की घुँघराई से,
जिसने देखी बस मेरी डोली देखी,
नहीं किसी ने पर दुलहन भोली देखी,
तन के तीर तैरने वाले मिले सभी,
मन के घाट नहाने वाला नहीं मिला।

सुख के साथी...

मैं जिस दिन सोकर जागा मैंने देखा,
मेरे चारों ओर ठगों का जमघट है,
एक इधर से एक उधर से लूट रहा,
छिन-छिन रीत रहा मेरा जीवन-घट है,
सबकी आँख लगी थी गठरी पर मेरी,
और मची थी आपस में मेरा-तेरी,

जितने मिले सभी धन के चोर मिले,
लेकिन हृदय चुराने वाला नहीं मिला।

सुख के साथी...

रूठी सुबह डिठौना मेरा छुड़ा गयी,
गयी ले गयी तरुणाई सब दोपहरी,
हँसी - ख़ुशी सूरज - चन्दा कि बाँट पड़ी,
मेरे हाथ रही केवल रजनी गहरी,
आकर जो लौटा कुछ लेकर ही लौटा,
छोटा और हो गया यह जीवन छोटा,
चीर घटाने वाले ही सब मिले यहाँ,
घटता चीर बढ़ाने वाला नहीं मिला।

सुख के साथी...

उस दिन जुगनू एक अँधेरी बस्ती में,
भटक रहा था इधर-उधर भरमाया-सा,
आसपास था अन्तहीन बस अँधियारा
केवल था शिर पर निज लौ का साया-सा,
मैंने पूछा तेरी नींद कहाँ खोई
वह चुप रहा, मगर उसकी ज्वाला रोई-
“नींद चुराने वाले ही तो मिले यहाँ,
कोई गोद सुलाने वाला नहीं मिला।”

सुख के साथी...

कितने दिन चलेगा?

रूप की इस काँपती लौ के तले
यह हमारा प्यार कितने दिन चलेगा?

नील-सर में नींद की नीली लहर,
खोजती है भोर का तट रात भर,
किन्तु आता प्रात जब गाती ऊषा,
बूँद बन कर हर लहर जाती बिखर,
प्राप्ति ही जब मृत्यु है अस्तित्व की,
यह हृदय-व्यापार कितने दिन चलेगा?

रूप की इस काँपती लौ के तले
यह हमारा प्यार कितने दिन चलेगा?

'ताज' यमुना से सदा कहता अभय-
'काल पर मैं प्रेम-यौवन की विजय'
बोलती यमुना-'अरे तू क्षुद्र क्या-
एक मेरी बूँद में डूबा प्रणय',
जी रही जब एक जल-कण कर तृषा,
तृप्ति का आधार कितने दिन चलेगा?

रूप की इस काँपती लौ के तले
यह हमारा प्यार कितने दिन चलेगा?

स्वर्ग को भू की चुनौती-सा अमर,
है खड़ा जो वह हिमालय का शिखर,
एक दिन हो भूविलुंठित गल-पिघल,
जल उठेगा बन मरुस्थल अग्नि-सर,
थिर न जब सत्ता पहाड़ों की यहाँ,
अश्रु का श्रृंगार कितने दिन चलेगा?

रूप की इस काँपती लौ के तले
यह हमारा प्यार कितने दिन चलेगा?

गूँजते थे फूल के स्वर कल जहाँ,
तैरते थे रूप के बादल जहाँ,
अब गरजती रात सुरसा-सी खड़ी,
घन-प्रभंजन की अनल-हलचल वहाँ,
काल की जिस बाढ़ में डूबी प्रकृति,
श्वास का पतवार कितने दिन चलेगा?

रूप की इस काँपती लौ के तले
यह हमारा प्यार कितने दिन चलेगा?

विश्व-भर में जो सुबह लाती किरण,
साँझ देती है वही तम को शरण,
ज्योति सत्य, असत्य तम फिर भी सदा,
है किया करता दिवस निशि को वरण,
सत्य भी जब थिर नहीं निज रूप में,
स्वप्न का संसार कितने दिन चलेगा?

रूप की इस काँपती लौ के तले
यह हमारा प्यार कितने दिन चलेगा?

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाती बूँद कौन?

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाती बूँद कौन?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं!

किस एक साँस से गाँठ जुड़ी है जीवन की?
हर जीवित से ज़्यादा यह प्रश्न पुराना है,
कौन-सी जलन जलकर सूरज बन जाती है
बुझकर भी दीपक ने यह भेद न जाना है,
परिचय करना तो है बस मिट्टी का सुभाव
चेतना रही है सदा अपरिचित ही बनकर,
इसलिए हुआ है अकसर ही ऐसा जग में
जब चला गया मेहमान, गया पहचाना है,

खिल-खिलकर, हँस-हँसकर, झर-झरकर काँटों में
उपवन का ऋण तो भर देता हर फूल मगर
मन की पीड़ा कैसे ख़ुशबू बन जाती है
यह बात स्वयं पाटल को भी मालूम नहीं!

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाती बूँद कौन?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं!

किस क्षण अधरों पर कौन गीत उग आएगा
ख़ुद नहीं जानती गायक की स्वरवती श्वास,
कब घट के निकट स्वयं पनघट उठ आएगा
यह मर्म बताने में है चिर असमर्थ प्यास,

जो जाना - वह सीमा है सिर्फ़ जानने की
सत्य तो अनजाने ही आता है जीवन में
उस क्षण भी कोई बैठा पास दिखाता है
जब होता अपना मन भी अपने नहीं पास।

जिस उँगली ने उठकर अंजन यह आँजा है
उसका तो पता बता सकते कुछ नयन, किन्तु
किस आँसू से पुतली उजली हो जाती है
यह बात स्वयं काजल को भी मालूम नहीं।

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाती बूँद कौन?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं!

क्यों सूरज जल-जलकर दिन-भर तप करता है?
जब पूछा संध्या से वह चाँद बुला लाई,
क्यों ऊषा हँसती है निशि के लुट जाने पर
जब एक कली से कहा खिली वह मुसकाई

हर एक प्रश्न का उत्तर है दूसरा प्रश्न
उत्तर तो सिर्फ़ निरुत्तर ही है इस जग में
जब-जब सोई है लाश गोद में मरघट की
तब-तब है बजी कहीं पर कोई शहनाई,

हर एक रुदन के साथ जुड़ा है एक गान
यह सत्य जानता है हर एक सितार मगर
किस घुंघरू से कितना संगीत छलकता है
यह बात स्वयं पायल को भी मालूम नहीं!

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाँती बूँद कौन?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं!

उस रोज़ राह पर मिला एक टूटा दर्पण
जिसमें मुख देखा था हर चाँद-सितारे ने,
काजल-कंघी, सेंदुर-बिन्दी से बार-बार
सिंगार किया था हँस-हँस साँझ-सकारे ने,

लेकिन टुकड़े-टुकड़े होकर भी वह मैंने
देखा सूरज से अपनी नज़र मिलाए था,
जैसे सागर पर हाथ बढ़ाया हो मानो
बुझते-बुझते भी किसी एक अंगारे ने

मैंने पूछा इतना जर्जर जीवन लेकर
कैसे कंकड़-पत्थर की चोटें सहता तू?

वह बोला, “किस चोट से चोट मिट जाती है?
यह बात स्वयं घायल को भी मालूम नहीं!”

उसकी अनगिन बूँदों में स्वाँती बूँद कौन?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं!

स्वर्ग दूत से

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गा लूँ तो चलूँ!

भटकी-भटकी है नज़र, गहरी-गहरी है निशा,
उलझी-उलझी है डगर, धुँधली-धुँधली है दिशा,
तारे ख़ामोश खड़े, द्वारे बेहोश पड़े
सहमी-सहमी है किरण, बहकी-बहकी है उषा,
गीत बदनाम न हो, ज़िन्दगी शाम न हो
बुझते दीपों को ज़रा सूर्य बना लूँ तो चलूँ।

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गा लूँ तो चलूँ!

बीन बीमार औ' टूटी पड़ी शहनाई है,
रूठी पायल ने न बजने की क़सम खाई है,
सबके सब चुप न कहीं गूँज, न झंकार कोई
और यह जब कि आज चाँद की सगाई है,
कहीं न नींद यह गंगा की मौत बन जाये
सोई बगिया में ज़रा शोर मचा लूँ तो चलूँ

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गा लूँ तो चलूँ!

बाद मेरे जो यहाँ और हैं गानेवाले,
स्वर की थपकी से पहाड़ों को सुलानेवाले
उजाड़ बागों - बियाबान - सूनसानों में,
छन्द की गन्ध से फूलों को खिलानेवाले,
उनके पाँवों के फफोले न कहीं फूट पड़ें
उनकी राहों के ज़रा शूल हटा लूँ तो चलूँ!

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गा लूँ तो चलूँ!

वे जो सूरज का गरम भाल खड़े चूम रहे,
वे जो तूफान में किश्त को लिये घूम रहे,
भरे भादों की घुमड़ती हुई बदली की तरह
वे जो चट्टान से टकराते हुए झूम रहे,
नये इतिहास की बाँहों का सहारा देकर,
तख़्ते-ताऊस पर जब उनको बिठा लूँ तो चलूँ!

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गा लूँ तो चलूँ!

यह लजाती हुई कलियों की शराबी चितवन
गीत गाती हुई पायल की यह नटखट रुनझुन
यह कुएँ - ताल, यह पनघट, यह त्रिवेणी, संगम
यह भुवन - भूमि अयोध्या, यह विकल वृन्दावन,
क्या पता स्वर्ग में फिर इनका दरस हो कि न हो,
धूल धरती की ज़रा सर प' चढ़ा लूँ तो चलूँ!

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गा लूँ तो चलूँ!

कैसे चल दूँ अभी कुछ और यहाँ मौसम है
होने वाली है सुबह पर न सियाही कम है
भूख-बेकारी-गरीबी की घनी छाया में
हर जुबाँ बन्द है, हर एक नज़र पुरनम है,
तन का कुछ ताप घटे, मन का कुछ पाप कटे,
दुखी इंसान के आँसू में नहा लूँ तो चलूँ!

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गा लूँ तो चलूँ!

मेरे जीवन का सुख

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनिया में,
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया।

हाथों को जो दिया खिलौना ऊषा ने
वह दिन की खींचा-तानी में टूट गया,
माथे पर जो मोती जड़ा सितारों ने
वह पतझरवाली गलियों में छूट गया,
आँगन चीखा, सेज-अटारी पछताई,
दृग भर लाई ढोलक, सिसकी शहनाई
कोई श्याम हठी सूने वृन्दावन में
मोहन बन आया, पाहन बन चला गया!

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनिया में,
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया।

मैंने रचा घरोंदा जो सागर-सीरे
उसे बहा ले गई समय की एक लहर,
किसी नयन की नदिया में जा डूब गया
फूँका जो स्वर मैंने श्वास-बाँसुरी पर,
जिसे किया प्यार था प्यार फूल वह शूल हुआ,
जिसे किया था याद ज्ञान वह भूल हुआ,
मेरा हर अनमोल रतन इस मेले में
कंचन बन आया, रजकण बन चला गया

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनिया में,
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया!

डाल गया था फूल मिलन जो अंचल में
उसे चुरा ले गई साँझ सूनी कोई,

विरह लिख गया था जो गीत अधरों पर
उसे याद कर बदली एक बहुत रोई
कुछ दिन हँसने की तैयारी में बीता,
कुछ दिन रोने की लाचारी में बीता,
मन की रजनी का प्रभात तन के द्वारे
फागुन बन आया, सावन बन चला गया।

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनिया में,
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया!

जो भी दीप जला संध्या के आँगन में
नहीं सुबह में उठकर नज़रे मिला सका,
जो भी फूल खिला उपवन की डाली पर
नहीं साँझ को झूला हँसकर झुला सका,
मुझे न कोई नज़र यहाँ ऐसा आता
सुबह-शाम से आगे जो बढ़कर गाता,
जिसने भी छेड़ा सितार यह साँसों का
गुँजन बन आया, क्रन्दन बन चला गया।

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनिया में,
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया!

उस दिन पथ पर मिला एक सूना मन्दिर
सोये थे कुछ स्वर जिसकी दीवारों में,
आँगन में बिखरा था कुछ चन्दन-कुंकुम
अक्षत कुछ अटके थे देहरी-द्वारों में
मैंने पूछा तेरा कहाँ पुजारी है?
वह जब तक कुछ कहे कि क्या लाचारी है?
तब तक आँसू एक ढुलक मेरे दृग में
अर्चन बन आया, दर्शन बन चला गया।

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनिया में,
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया!

मौसम गुज़र गया

मैं जिस मौसम का राजा था
वो तो मौसम गुज़र गया
पता नहीं वो जाने वाला
इधर गया या उधर गया।।

आई ऐसी नींद सुनहरी
आँखें खोले सोये हम,
रोना था तब हँसे स्वयं पर—
हँसना था तब रोये हम,
इसी एक उलझन में जीवन
कुछ बिगड़ा, कुछ सँवर गया।
पता नहीं वो जाने वाला
इधर गया या उधर गया।।

राही बदला, मंज़िल बदली—
रस्ता और सफ़र बदला
आँसू तो मोती निकला
और मोती इक पत्थर निकला
भेद खुला ये तब जब अपना
सारा वैभव बिखर गया।
पता नहीं वो जाने वाला
इधर गया या उधर गया।।

सुबह गई वो शाम गई वो
रात गई वो रस-भीनी
पास बची तो सिर्फ़ बची है
चादर इक झीनी-झीनी
रूप उमर का एक नशे की
तरह चढ़ा फिर उतर गया।

पता नहीं वो जाने वाला
इधर गया या उधर गया।।

चाक समय का, घट माटी का
जो था, हम जीवन समझे
इक रंगीन तमाशा था जो
उसको हम यौवन समझे
बच्चा इक मेले में आकर
ख़ुद से हो बेख़बर गया।
पता नहीं वो जाने वाला
इधर गया या उधर गया।

गीत गये वो गंध गई वो
उड़ी सुरों की कोयल भी
चुरा ले गया काल नयन से
सपनों वाला काजल भी
खोज रहा हूँ आज अकेला
समय कहाँ वो किधर गया।
पता नहीं वो जाने वाला
इधर गया या उधर गया।।

आदि पुरुष

संहार-सृजन के वज्र-अक्षरों में अक्षर
 जब लिखी गई थी नहीं कथा जड़-चेतन की
तब मैं ही था रच रहा एक नवसृष्टि यहाँ
 चिर-चिर अभिनव चिर-चिर विराट अपनेपन की!

संसार न था जब, तब मैं था संसार स्वयं
 जब था न पवन, तब मैं था एक अनन्त श्वास,
जब नहीं जले थे अम्बर में रवि-शशि-उडुगन
 तब एक दीप बन मैं ही था जग का प्रकाश!

जब आदि न था, तब अन्त बना मैं व्याप्त रहा,
 कामना न जन्मी थी तब मैं था पूर्णकाम,
जब नहीं हुआ था भू-नव का परिचय-परिणय
 तब मैं ही था सम्पूर्ण सृष्टि का दृष्टि-धाम!

जब धर्म न था, धृति मैं धरती का प्राण रहा,
 जब कर्म न था, तब मैं था कृति का महोल्लास,
जब भक्ति न उतरी थी श्रद्धा के आँगन में
 अपने ही विरह-मिलन का था मैं रुदन-हास!

आश्रान्त उषा, आक्लान्त निशा, दिग्भ्रान्त दिशा,
 ऋतु, मरुत, सलिल-पावक, क्षिति शून्य अनन्त-अन्त
थे घूम रहे जिसकी आरती बने-से सब
 मैं ही था ज्वालाम्बरी इन्दु वह ज्योतिवन्त!

पल-विपल निमिष-क्षण, दिवस-मास अब्दाब्द कल्प
 बिखरे थे जो कालोदधि पर मुक्तादल-से
मैंने ही गूँथे थे निशि-दिन की माला में
 अपनी पलकों के मीलन-उन्मीलन छल से!

तम की हिमवती गुहा में जो चेतना सती
सोयी थी सुप्त शिखा-सी चिर निष्कामव्रती
जागी थी जिस दिन मेरे मन के मन्थन ने
रजवर्णी रति के रंग से श्वास रँगी रति की!

ध्वनि-वसना, स्वर-कर्णा, लय-वर्णा, गति-चरणा,
जो शून्य-समाधि लगाये बैठी थी वाणी
कवि-कविता, काव्य-छन्द गीतों में गूँज उठी
जिस दिन मुझसे बोला मेरे दृग का पानी!

सौन्दर्य-सत्य, आकृति-अभाव में जो अकृत्य-
बन स्वप्न कहीं बैठे थे निद्रा के द्वारे
मैंने ही मिट्टी को देकर आकार-सार
ला जन्म-मरण के वसन दिये उनको न्यारे!

कुन्तला-ज्योति-घन-कला-किरन-बाला चपला
जो सोयी थी जड़ अँक पूर्ण निष्पन्द शान्त
मैंने ही नयनाकर्षण-शर से बेध उसे
दे दिया कल्पना का निवास-गृह विरह-प्रान्त!

रवि-शशि के दीप जला दृग के वातायन से
निशि-दिन जिसका पथ तकती थी वय की राधा
मैं ही था उसका आदि-पुरुष वह मनमोहन
वंशी की लय-ध्वनि में जिसने त्रिभुवन बांधा!

पतझर के पीत-वसन धारण कर ऋतुम्भरा
जिसके वियोग में बनी योगिनी थी सदेह,
कलि-कुसुम-छन्द, मधु-गिरा-गन्ध, आनन्द-कन्द
मैं ही था उसका ऋतुपति मनभावन विदेह!

सीमाओं की सीमा, असीम की असीमता
लघु की लघुता, गुरु की गुरुता, तृण-सहस्त्रार
मुझमें ही व्याप्त रहे थे सब ऐसे जैसे
रजकण में गिरि को धारण करने का विचार!

पर सृष्टि-प्रसारण हित ही मैंने अनमाँगे
दे दिये मृतिका को जो अपने अश्रु-प्राण,
अब मुझे मिटाने का ही वह छल करती है

मेरे मन से अपने तन का कर व्याख्यान!

सूनी-सूनी साँस की सितार पर

सूनी - सूनी साँस की सितार पर,
गीले - गीले आँसुओं के तार पर,

एक गीत सुन रही है ज़िन्दगी,
एक गीत गा रही है ज़िन्दगी।

चढ़ रहा है सूर्य उधर, चाँद इधर ढल रहा,
झर रही है रात यहाँ, प्रात वहाँ खिल रहा,
जी रही है एक साँस, एक साँस मर रही,
बुझ रहा है एक दीप, एक दीप जल रहा,
इसलिए मिलन - विरह - विहान में-

इक दिया जला रही है ज़िन्दगी,
इक दिया बुझा रही है ज़िन्दगी।

रोज़ फूल कर रहा है धूल के लिए सिंगार,
और डालती है रोज़ धूल फूल पर अंगार,
कूल के लिए लहर-लहर विकल मचल रही,
किन्तु कर रहा है कूल बूँद-बूँद पर प्रहार,
इसलिए घृणा - विदग्ध - प्रीति को-

एक क्षण हँसा रही है ज़िन्दगी,
एक क्षण रुला रही है ज़िन्दगी।

एक दीप के लिए पतंग कोटि मिट रहे,
एक मीत के लिए असंख्य मीत छुट रहे,
एक बूँद के लिए गले ढले हज़ार मेघ,
एक अश्रु से सजीव सौ सपन लिपट रहे,
इसलिए सृजन - विनाश - सन्धि पर-

एक घर बसा रही है ज़िन्दगी,
एक घर मिटा रही है ज़िन्दगी।

सो रहा है आसमान, रात रो रही खड़ी,
जल रही बहार, कली नींद में जड़ी पड़ी,
धर रही है उम्र की उमंग कामना शरीर,
टूट पर बिखर रही है साँस की लड़ी-लड़ी,
इसलिए चिता की धूप - छाँह में-

एक पल सुला रही है ज़िन्दगी,
एक पल जगा रही है ज़िन्दगी।

जा रही बहार, आ रही ख़िज़ाँ लिये हुए,
जल रही सुबह बुझी हुई शमा लिये,
रो रहा है अश्क, आ रही है आँख की हँसी,
राह चल रही है गर्दे-कारवाँ लिये हुए,
इसलिए मज़ार की पुकार पर-

एक बार आ रही है ज़िन्दगी,
एक बार जा रही है ज़िन्दगी।

कफ़न है आसमान

मत करो प्रिय! रूप का अभिमान,
क़ब्र है धरती, कफ़न है आसमान।

हर पखेरू का यहाँ है नीड़ मरघट पर,
है बँधी हर एक नैया मृत्यु के तट पर,
ख़ुद-ब-ख़ुद चलती हुई यह देह अर्थी है,
प्राण है प्यासा पथिक संसार-पनघट पर,
किसलिए फिर प्यास का अपमान?
जी रहा है प्यास पी-पी कर जहान।

मत करो प्रिय! रूप का अभिमान,
क़ब्र है धरती, कफ़न है आसमान।

भूमि से, नभ से, नरक से, स्वर्ग से भी दूर,
हो कहीं इन्सान पर है मौत से मजबूर,
धूर सब कुछ इस मरण की राजधानी में,
सिर्फ़ अक्षय है किसी की प्रीति का सिन्दूर,
किसलिए फिर प्यार का अपमान?
प्यार है तो ज़िन्दगी हरदम जवान।

मत करो प्रिय! रूप का अभिमान,
क़ब्र है धरती, कफ़न है आसमान।

रंक-राजा, मूर्ख-पंडित, रूपवान-कुरूप,
साँझ बननी है सभी की ज़िन्दगी की धूप,
आख़िरी सब की यहाँ पर है चिता ही सेज,
धूल ही श्रृंगार अन्तिम, अन्त-रूप अनूप,
किसलिए फिर धूल का अपमान?
धूल हम तुम, धूल है सब की समान।

मत करो प्रिय! रूप का अभिमान,
क़ब्र है धरती, कफ़न है आसमान।

एक भी देखा न ऐसा फूल इस जग में,
जो नहीं पथ पर चुभा हो शूल बन पग में,
सब यहीं छूटा पिया घर जब चली डोली,
एक आँसू ही रहा बस साथ दृग-मग में,
किसलिए फिर अश्रु का अपमान?
अश्रु जीवन में अमृत से भी महान।

मत करो प्रिय! रूप का अभिमान,
क़ब्र है धरती, कफ़न है आसमान।

प्राण! जीवन क्या क्षणिक बस साँस का व्यापार,
देह की दुकान जिस पर काल का अधिकार,
रात को होगा सभी जब लेन-देन समाप्त,
तब स्वयं उठ जायगा यह रूप का बाज़ार,
किसलिए फिर रूप का अभिमान?
फूल के शव पर खड़ा है बाग़वान।

मत करो प्रिय! रूप का अभिमान,
क़ब्र है धरती, कफ़न है आसमान।

मुस्कुराकर चल मुसाफ़िर

पंथ पर चलना तुझे तो मुस्कुराकर चल मुसाफ़िर!

वह मुसाफ़िर क्या जिसे कुछ शूल ही पथ के थका दें?
हौंसला वह क्या जिसे कुछ मुश्किलें पीछे हटा दें?
वह प्रगति भी क्या जिसे कुछ रंगिनी कलियाँ तितलियाँ,
मुस्कुराकर गुनगुनाकर ध्येय-पथ, मंज़िल भुला दें?
ज़िन्दगी की राह पर केवल वही पंथी सफल है,
आँधियों में, बिजलियों में जो रहे अविचल मुसाफ़िर!
पंथ पर चलना तुझे तो मुस्कराकर चल मुसाफ़िर।।

जानता जब तू कि कुछ भी हो तुझे बढ़ना पड़ेगा,
आँधियों से ही न ख़ुद से भी तुझे लड़ना पड़ेगा,
सामने जब तक पड़ा कर्तव्य-पथ तब तक मनुज ओ!
मौत भी आये अगर तो मौत से भिड़ना पड़ेगा,
है अधिक अच्छा यही फिर पंथ पर चल मुस्कुराता,
मुस्कुराती जाय जिससे ज़िन्दगी असफल मुसाफ़िर!
पंथ पर चलना तुझे तो मुस्कुराकर चल मुसाफ़िर।।

याद रख जो आँधियों के सामने भी मुस्कुराते,
वे समय के पंथ पर पदचिन्ह अपने छोड़ जाते,
चिन्ह् वे - जिनको न धो सकते प्रलय-तूफ़ान घन भी,
मूक रह कर जो सदा भूले हुओं को पथ बताते,
किन्तु जो कुछ मुश्किलें ही देख पीछे लौट पड़ते,
ज़िन्दगी उनकी उन्हें भी भार ही केवल मुसाफ़िर!
पंथ पर चलना तुझे तो मुस्कुराकर चल मुसाफ़िर।।

कंटकित यह पंथ भी हो जायेगा आसान क्षण में,
पाँव की पीड़ा क्षणिक यदि तू करे अनुभव न मन में,
सृष्टि सुख-दुख क्या हृदय की भावना के रूप हैं दो,

भावना की ही प्रतिध्वनि गूँजती भू, दिशि, गगन में,
एक ऊपर भावना से भी मगर है शक्ति कोई,
भावना भी सामने जिसके विवश व्याकुल मुसाफ़िर!
पंथ पर चलना तुझे तो मुस्कुराकर चल मुसाफ़िर।।

देख सर पर ही गरजते हैं प्रलय के काल-बादल,
व्याल बल फ़ुफ़कारता है सृष्टि का हरिताभ अंचल,
कंटकों ने छेदकर है कर दिया जर्जर सकल तन,
किन्तु फिर भी डाल पर मुसका रहा वह फूल प्रतिपल,
एक तू है देखकर कुछ शूल ही पथ पर अभी से,
है लुटा बैठा हृदय का धैर्य, साहस बल मुसाफ़िर!
पंथ पर चलना तुझे तो मुस्कुराकर चल मुसाफ़िर।।

धर्म है

जिन मुश्किलों में मुस्कुराना हो मना,
उन मुश्किलों में मुस्कुराना धर्म है!

जिस वक़्त जीना ग़ैर-मुमकिन-सा लगे,
उस वक़्त जीना फ़र्ज है इन्सान का,
लाज़िम लहर के साथ है तब खेलना,
जब हो समुन्दर पर नशा तूफ़ान का,
जिस वायु का दीपक बुझाना ध्येय हो,
उस वायु में दीपक जलाना धर्म है!

जिन मुश्किलों में मुस्कुराना हो मना,
उन मुश्किलों में मुस्कुराना धर्म है!!

हो ही नहीं मंज़िल कहीं जिस राह की,
उस राह चलना चाहिए संसार को,
जिस दर्द से सारी उमर रोते कटे,
वह दर्द पाना है ज़रूरी प्यार को,
जिस चाह का हस्ती मिटाना नाम है,
उस चाह पर हस्ती मिटाना धर्म है!

जिन मुश्किलों में मुस्कुराना हो मना,
उन मुश्किलों में मुस्कुराना धर्म है!!

आदत पड़ी हो भूल जाने की जिसे,
हर दम उसी का नाम हो हर साँस पर,
उसकी ख़बर में ही सफ़र सारा कटे,
जो हर नज़र से हर तरह हो बेख़बर,
जिस आँख का आँखें चुराना काम हो,
उस आँख से आँखें मिलाना धर्म है!

जिन मुश्किलों में मुस्कुराना हो मना,
उन मुश्किलों में मुस्कुराना धर्म है!!

जब हाथ से टूटे न अपनी हथकड़ी,
तब माँग लो ताक़त स्वयं जंज़ीर से,
जिस दम न थमती हो नयन-सावन-झड़ी,
उस दम हँसी ले लो किसी तस्वीर से,
जब गीत गाना-गुनगुनाना जुर्म हो,
तब गीत गाना-गुनगुनाना धर्म है!

जिन मुश्किलों में मुस्कुराना हो मना,
उन मुश्किलों में मुस्कुराना धर्म है!!

अधिकार जब अधिकार पर शासन करे,
तब छीनना अधिकार ही कर्तव्य है,
संहार ही हो जब सृजन के नाम पर,
तब सृजन का संहार ही भवितव्य है,
बस ग़रज़ यह गिरते हुए इन्सान को,
हर तरह हर विधि से उठाना धर्म है!

जिन मुश्किलों में मुस्कुराना हो मना,
उन मुश्किलों में मुस्कुराना धर्म है!!

सावन के त्योहार में

तूने मुझको ऐसे लूटा है इस भरे बाज़ार में
चुनरी तक का रंग उड़ गया सावन के त्योहार में!

मैं तो आई थी ख़रीदने हीरक-बेंदी भाल की,
कच्ची चूड़ी किन्तु पिन्हादी तू सोलह साल की,
दाम लिया कुछ नहीं छली! पर छल मुझसे ऐसा किया
गाँठ टटोली तो देखा है पूँजी लुटी त्रिकाल की,
उन नयनों की चितवन जाने बिन बोले क्या कह गई
डूबी मेरी नींद सदा को मेरी ही दृग-धार में!

चुनरी तक का रंग उड़ गया सावन के त्योहार में!

अब तो निशि-दिन नयन खड़े रहते तेरे ही द्वार पर
उठ-उठ पाँव दौड़ जाते हैं किसी नदी के पार पर
हो इतनी बदनाम गई इस चोरी-चोरी प्रीति में,
गली-गली हँसती है मेरे काजल पर शृँगार पर,
बहुत चाहती लोग न जाने मेरे-तेरे नेह को
तेरा ही पर नाम अधर जपते हर-एक पुकार में!

चुनरी तक का रंग उड़ गया सावन के त्योहार में!

आये लाखों लोग ब्याहने मेरी क्वांरी पीर को
पर कोई तस्वीर न भाई घायल हृदय अधीर को,
बात चली जब-जब विवाह की सिसका आँसू आँख का,
रात-रात भर रही कोसती नथनी श्वास-समीर को,
कैसे किसके गले डाल दूँ माला अपने हाथ से
मैं तो अपनी नहीं, धरोहर हूँ तेरी संसार में!

चुनरी तक का रंग उड़ गया सावन के त्योहार में!

सौ-सौ बार आई द्वार मधुऋतु ले हँसी पराग की
एक न दिन भी पर मुसकाई ऋतु मेरे अनुराग की,
लाखों बार घटा ने बदली बिजली वाली कंचुकी
दमकी मेरे माथ न अब तक टिकुली किन्तु सुहाग की,
कैसे काँटू रात अकेली, कैसे झेलूँ दाह यह!
बारी प्रीति सयानी होने वाली है दिन चार में!

चुनरी तक का रंग उड़ गया सावन के त्योहार में!

पकी निबौरी, हरे हो गये पीले पत्ते आम के
लिये बादलों ने हाथों में हाथ झुलसती घाम के,
भरे सरोवर-कूप, लग गईं नदियाँ सागर के गले,
खिले बाग के फूल, मिले आ पथिक सुबह के शाम के,
कैसे तुमसे मिलूँ मगर मैं जनम-जनम के मीत ओ!
चुन रक्खा है मुझे साँस ने मिट्टी की दीवार में!

चुनरी तक का रंग उड़ सावन के त्योहार में!

जूड़े घटाओं के

दिन गये अब बीत शरमीली हवाओं के,
दूर तक दिखते नहीं जूड़े घटाओं के।

झाँकती खिड़की न कोई हर किवाड़ा बंद,
पी गया सुनसान सारा रूप सब मकरंद,
रह गये हैं हाथ बस कुछ ख़त गुनाहों के।
दूर तक दिखते नहीं जूड़े घटाओं के।

सिर्फ़ रस ही रस बरसाती थी जहाँ बरसात,
स्वर्ग से कुछ कम न रचती थी जहाँ हर रात,
हैं वहाँ अब मंच आँसू की सभाओं के।
दूर तक दिखते नहीं जूड़े घटाओं के।।

आह श्यामल बाहुओं की घाटियों के पार,
जो बसा संसार वैसा कब बसा संसार!
कौन अब शीर्षक बताए उन कथाओं के?
दूर तक दिखते नहीं जूड़े घटाओं के।।

अब न वह मौसम, न वह सरगम, न वह संगीत,
फूल के कपड़े पहनकर नाग करते प्रीत,
सौंप दूँ किसको खिलौने भावनाओं के?
दूर तक दिखते नहीं जूड़े घटाओं के।।

रूठ मत मेरी उमर, मत टूट मेरी आस
ज़िन्दगी विश्वास है, विश्वास बस विश्वास,
पोंछ ले आँसू बिलखती सारिकाओं के।
श्याम आयेंगे ज़रूरी गोपिकाओं के!!

दिन गये अब बीत शरमीली हवाओं के।
दूर तक दिखते नहीं जूड़े घटाओं के

भावनगर से अर्थनगर में

चलते - चलते पहुँच गये हम
भागनगर से अर्थनगर में
जाने कितने और मोड़ हैं
जीवन के अनजान सफ़र में

नहीं ज़िन्दगी रही ज़िन्दगी
शब्दों की दूकान हो गई,
ख़ुद पर आये शर्म हमें
मंज़िल इतनी आसान हो गई।
अपने ही हाथों से हमने
आग लगा दी अपने घर में।
चलते-चलते पहुँच गए हम।

मोती के लालच में हमने
सिर्फ़ बटोरे कंकड़-पत्थर
हमें डूबना था आँसू में
डूबे हम फूलों में जाकर
हम ऐसे लुट गए कि जैसे
डोली लुट जाये पीहर में
चलते-चलते पहुँच गये हम।।

एक समय वह भी था जब
पूरे गुलशन में हम ही हम थे
गीत हमारे ही गुलाब थे
अश्क हमारे ही शबनम थे
है यश का पैबन्द मगर अब
जीवन की मैली चादर में।
चलते-चलते पहुँच गये हम।।

आँसू के बाग़ों में जिसने
जाकर बोये गीत - रुबाई,
सिक्कों की धुन पर अब नाचे
उसके ही सुर की शहनाई।
सुबह गुज़ारी थी सतजुग में
शाम गुज़रती है द्वापर में।
चलते-चलते पहुँच गये हम।

एक मोड़ था जिसने हमको
गीतों का शृँगार बनाया
दूजा है ये मोड़ कि जिसने
कविता को अख़बार बनाया,
मगर तीसरा मोड़ कहाँ है
देखूँगा आखिरी पहर में।
चलते-चलते पहुँच गये हम
भावनगर से अर्थनगर में।।

यह प्यासों की प्रेम सभा है

यह प्यासों की प्रेम सभा है यहाँ सँभलकर आना जी
जो भी आये यहाँ किसी का हो जाये दीवाना जी।

(1)
ऐसा बरसे रंग यहाँ पर
जनम - जनम तक मन भींगे
फागुन बिना चुनरिया भींगे
सावन बिना भवन भींगे
ऐसी बारिश होय यहाँ पर बचे न कोई घराना जी।
यह प्यासों की प्रेम सभा है...

(2)
यहाँ न झगड़ा जाति-पाँति का
और न झंझट मज़हब का
एक सभी की प्यास यहाँ पर
एक ही है प्याला सबका
यहाँ पिया से मिलना हो तो परदे सभी हटाना जी।
यह प्यासों की प्रेम सभा है...

(3)
यहाँ दुई की सुई न चुभती
घुले बताशा पानी में
पहने ताज फ़कीर घूमते
मौला की रजधानी में
यहाँ नाव में नदिया डूबे, सागर सीप समाना जी
यह प्यासों की प्रेम सभा है...

(4)
यहाँ न कीमत कुछ पैसे की

कीमत सिर्फ़ सुगंधों की
छुपे हुए हैं लाख रतन
इस गुदड़ी में पैबन्दों की
हर कोई बिन मोल पिये वो खुला यहाँ मयखाना जी
यह प्यासों की प्रेम सभा है...

(5)

चार धाम का पुण्य मिले
इस दर पर शीश झुकाने में
मज़ा कहाँ वो जीने में जो
मज़ा यहाँ मर जाने में
हाथ जोड़ कर मौत यहाँ पर चाहे ख़ुद मर जाना जी
यह प्यासों की प्रेम सभा है...

एक दिन भी जी मगर

एक दिन भी जी मगर तू ताज बनकर जी,

अटल विश्वास बनकर जी;
अमर युग-गान बनकर जी!

आज तक तू समय के पदचिन्ह-सा ख़ुद को मिटाकर
कर रहा निर्माण जग-हित एक सुखमय स्वर्ग सुन्दर,
स्वार्थी दुनिया मगर बदला तुझे यह दे रही है-
भूलता युग-गीत तुझको ही सदा तुझसे निकलकर,
'कल' न बन तू ज़िन्दगी का 'आज' बनकर जी,
जगत-सरताज बनकर जी!

जन्म से तू उड़ रहा निस्सीम इस नीले गगन पर,
किन्तु फिर भी छाँह मंज़िल की नहीं पड़ती नयन पर,
और जीवन-लक्ष्य पर पहुँचे बिना जो मिट गया तू-
जग हँसेगा खूब तेरे इस करुण असफल मरण पर,
ओ मनुज! मत विहग बन आकाश बनकर जी,
अटल विश्वास बनकर जी!

एक युग से आरती पर तू चढ़ाता निज नयन ही
पर कभी पाषाण क्या ये पिघल जाये एक क्षण भी,
आज तेरी दीनता पर पड़ रहीं नज़रें जगत की,
भावना पर हँस रही प्रतिमा धवल, दीवार मठ की,
मत पुजारी बन स्वयं भगवान बनकर जी!
अमर युग-गान बनकर जी!

चल औघट घाट पर यार

चल औघट घाट पर यार ज़रा क्या रक्खा है आलमगीरी में
जो आये मज़ा फ़कीरी में वो मस्ती कहाँ अमीरी में

अनजान सफ़र में जीवन के दुनिया ये मुसाफ़िरख़ाना है
अपनी-अपनी बारी सबको इस भोग-भवन से जाना है
चाहे सिक्कों से भर झोली, चाहे सोने के पहन कड़े
वो सब मिट्टी हो जाना है जो तेरे पास खज़ाना है।
जब तक पड़ाव है पड़ा यहाँ कुछ प्यार जोड़ कुछ प्यार लुटा
वो स्वाद न छप्पन भोगों में जो स्वाद है प्रेम-पंजीरी में।
चल औघट घाट पर...

कुर्सी की गुलामी करके तू अपना सिंहासन भूल गया,
मन्दिर-मस्जिद में जा-जाकर उस यार का आँगन भूल गया
इक यासो-हवस के चक्कर में ऐसा भूला यूँ भरमाया
हर दर्पन में मुखड़ा देखा पर दिल का दर्पन भूल गया,
दुनिया से लड़ाई बहुत नज़र अब अपने से भी नज़र मिला
जो रस है अपनी आँखों में वो रस न कली कश्मीरी में
चल औघट घाट पर...

कैसे-कैसे किस-किस रंग में कलदार की धुन पर तू नाचा
इस पार नचा, उस पार नचा, मझधार की धुन पर तू नाचा
जीवन-भर नाचा किया मगर समझा तू सब को नचाता है
संसार को नाच नचाने में संसार की धुन पर तू नाचा
सब ताल-धुनों पर नाच चुका अब दिल की धुन पर नाच ज़रा
जो राग है दिल की धड़कन में वो राग न किसी नफ़ीरी में
चल औघट घाट पर...

तू क़ैद रहा हरदम प्यारे! कपड़ों में कभी दीवारों में
शब्दों में कभी, भाषा में कभी, नक्शों में कभी अख़बारों में

अब तो “घूँघट पट खोल ज़रा” इस क़ैदे कफ़स के बाहर आ
तू ही न रहेगा तू वरना इन मेलों इन बाज़ारों में
सारा आकाश है ताज तेरा सारा भूगोल है तख्त तेरा
बस छोड़ जहाँगीरी, आ जा हम मस्तों की जागीरी में।
चल औघट घाट पर...

गोली चले बाज़ारों में

देखो देश का हाल हुआ क्या
फँसकर कुछ अय्यारों में
राजघाट पर खून बरसता
गोली चले बाज़ारों में!

उठक-पटक वो मची कि
सारे घटक खटक कर भटक गये
कुछ तो गिरे कढ़ाही में और
कुछ ख़जूर में लटक गये

हरियाने से दिल्ली तक और
दिल्ली से लेकर पटने तक
किसी की टूटी कमर किसी के
पाँव के गट्टे चटख गये
जैसी होय लड़ाई भइया
नेताओं के दंगल में
नहीं लड़ाई देखी वैसी
भटियारिन - भटियारों में।
राजघाट पर ख़ून बरसता
गोली चले बाज़ारों में।

अनुशासन के नाम पै अब तो
टेशन ऊपर रेल लुटे
चौराहे पर बसें लुटें
और मंडी के भीतर ठेल लुटे

केबिन में लुट गया व्यापारी
सड़क पै लुट गई अस्मत रे
बैंक लुटे, गोदाम लुटे,

कचहरी लुटी और जेल लुटे,
लूटपाट के रामराज्य में
ऐसी लूट मची भैया
विद्या विद्यालय में लुट गई
मज़हब ठाकुरद्धारों में।
राजघाट पर ख़ून बरसता
गोली चले बाज़ारों में।

उधर जले आसाम, इधर
पंजाब और कश्मीर जले
भारत माँ का चीर जले
आज़ादी की तस्वीर जले।

राजनीति मज़हब ने मिलकर
ऐसी आग लगा डाली
गांधी जले, सुभाष जले
फिर नानक और कबीर जले।
आरक्षण और जातिवाद ने
ऐसे कंडे सुलगाये
'बिना कफ़न के युवक जल गये
चौराहों गलियारों में'
राजघाट पर ख़ून बरसता
गोली चले बाज़ारों में।

हुई अराजकता स्वतंत्र
और भ्रष्टाचार जवान हुआ
रिश्वतखोरी सीनाज़ोरी
जन - जन का ईमान हुआ।

सिंहासन के लिए देश में
हुई रामलीला ऐसी
रावण तो बन गया राम
और खर-दूषण हनुमान हुआ।
वोटों की ख़ातिर ये सत्ता-लोलुप पतित हुए इतने
संविधान चुन गया देश का संसद की दीवारों में।
राजघाट पर ख़ून बरसता
गोली चले बाज़ारों में।

हड़तालें कर रहे सिपाही
तोड़ - फोड़ मज़दूर करे
बिजली पानी बन्द तो
घर-घर फाक़ा हर मज़बूर करे

अंधकार ही अंधकार है
अब पूरब से पश्चिम तक
पता नहीं ये घोर अमावस
कौन चन्द्रमा दूर करे
देखा जो ये हाल गाँव
की गोरी इक हमसे बोली
'चुनरी तक का रंग उड़ गया
इन कलमुँही बहारों में'।
राजघाट पर ख़ून बरसता
गोली चले बाज़ारों में।

मन्दिर से मस्ज़िद लड़ती है
गुरुद्वारे से गुरुद्वारा
दंगों और लफंगों का है
गली - गली में पौबारा

महँगाई सुरसा-सी बढ़ती
भूख खड़ी है डायन सी
मंत्री जी तब बजा रहे हैं
गांधी नाम का इकतारा।
देख सको करतूत जो अपनी
देखो मेरे नेताओं!
लोग तुम्हारा नाम
लिख रहे हैं अब तो गद्दारों में।
राजघाट पर ख़ून बरसता
गोली चले बाज़ारों में।

मैंने वह अँगूठी उतार दी

मैंने वह अँगूठी उतार दी!
अपने मिथ्या गर्व का प्रतीक,
दुनिया के दुखों का हेतु,
सब की ईर्ष्या का प्रमाण-पत्र—
                मैंने वह अँगूठी उतार दी!

हीरे की अँगूठी थी,
उँगली में चमकती थी तारे-सी
शीशे पर फिसलते पारे-सी
हर नंगी उँगली,
हर रीती कलाई
हर ख़ाली जेब का उड़ाती थी मज़ाक
सब पर करती थी व्यंग्य,
जैसे वह है शीर्षक
और सब हैं पंक्ति—
                मैंने वह अँगूठी उतार दी!

चिन्तित रखा उसने मुझे
बस में, ट्रेन में
घर में, बाज़ार में,
सूने में, मेले में,
खुलकर न मिलने दिया इससे या उससे,
दोस्त बनाने दिया नहीं किसी दुश्मन को,
सब को समझती रही चोर,
ऐसी शहज़ोर
                मैंने वह अँगूठी उतार दी!

जब तक वह रही,
                मैं नहीं रहा;

सभा में, गोष्ठी में
गाँव में, कालिज में,
दिन में, रात में,
जो कुछ मैं बोला,
मैंने नहीं, उसने ही कहा;
अनुकृति की कृति,
मैंने वह अँगूठी उतार दी!

अब मेरी उँगली है सूनी,
हाथ लगता है कुरूप,
देखती नहीं है अब मुझे कोई दृष्टि,
राजा से बन गया हूँ प्रजा,
छन्द से वाक्य
दृश्य से श्रव्य;
लेकिन ख़ुश हूँ
खुली छत पर सोता हूँ
बेहद्दी भीड़ में आता हूँ, जाता हूँ,
जो कुछ मन में आए वह गाता हूँ;
अपनी आत्मा की उमर- क़ैद—
मैंने वह अँगूठी उतार दी!

पागलखाना कुर्सी का

जिस नेता को भी देखो
वो है दीवाना कुर्सी का
सारा देश बना है अपना
पागलखाना कुर्सी का

कुर्सी की खातिर लोगों ने
क्या न किये छल-छन्द यहाँ
कोई बना मीरजाफ़र तो
कोई बना जयचंद यहाँ
देश भक्त ग़द्दार बना पाकर नज़राना कुर्सी का
जिस बंदे को भी देखो
वो है दीवाना कुर्सी का

राजघाट की क़सम यहाँ
बदनाम हुई कुर्सी के लिए
वेश्या बनकर राजनीति
नीलाम हुई कुर्सी के लिए
भर आती है आँख अगर हम कहें फ़साना कुर्सी का
सारा देश बना है अपना
पागलखाना कुर्सी का,

सिद्धांतों की क़ब्र खुदी
और आदर्शों की चिता जली
नींव पड़ी विश्वासघात की
ग़द्दारी की हवा चली
यह सब जिसने किया एक था वो मौलाना कुर्सी का
सारा देश बना है अपना
पागलखाना कुर्सी का।

कुर्सी को जो कृपा हुई तो
गधा बन गया अफसर है
चोर बन गया कोतवाल और
डाकू बना मिनिस्टर है
क्या-क्या रंग दिखाये कोई दौलतखाना कुर्सी का
सारा देश बना है अपना
पागलखाना कुर्सी का।

कुर्सी के बाज़ार में नंगा
होकर यूँ इन्सान बिका
दीन बिका, ईमान बिका
और देश का सब सम्मान बिका
कहीं न हिन्दुस्तान बेच दे कोई दिवाना कुर्सी का
सारा देश बना है अपना
पागलखाना कुर्सी का।

मैं तो लेकर कलम उठूँ
तुम लेकर नई मशाल उठो
साज़िश का ये नगर ध्वस्त हो
हँसिये ओर कुदाल उठो
लोकतंत्र बन गया है अपना आना-जाना कुर्सी का।
सारा देश बना है अपना
पागलखाना कुर्सी का

पराजय भी फिर जय है

यदि मन अजित-अजेय, पराजय भी फिर जय है।

भूलुंठित भूजचक्र, किरीट, कवच, कल कुंडल,
टूक-टूक तूणीर, खंड कोदण्ड, दण्ड - बल,
श्रीहत शयित धरायित सैन्य सनी शोणित में,
क्षत-विक्षत शिर-वक्ष, न कोई साथी-सम्बल,
पर जब तक लालसा समर की शेष रक्त में,
हार - हार यह नहीं, विजय ही अमर अभय है।
यदि मन अजित-अजेय, पराजय भी फिर जय है।

अर्घ्य नहीं, आरती नहीं, हो नहीं अर्चना,
कर्म नहीं, साधना नहीं, हो नहीं वन्दना,
ध्यान नहीं, धारणा नहीं, हो नहीं देवता,
फूल न चन्दन, भोग न पूजा, नहीं प्रार्थना,
पूजा की भावना पुजारी में पर जब तक,
झुके जहाँ भी शीश वही ंतो देवालय है।
यदि मन अजित-अजेय, पराजय भी फिर जय है।

सुप्त सितारे, चाँद, गगन, भू, सुप्त दिशायें,
सुप्त विजन वन, सुप्त पात, द्रुम, सुप्त हवायें,
सपनों के जादूघर में खो गई पुतलियाँ,
सुप्त प्रणय के गान, प्राण की सुप्त व्यथायें,
पर जब तक छल रहा चकोरी को शशि निष्ठुर
यह निद्रालस-रास जागरण का अभिनय है।
यदि मन अजित-अजेय, पराजय भी फिर जय है।

धू - धू जलती धरा उगलती आग-अंगारे,
ताप-त्रस्त नभ, खौल रहे सरि-सागर सारे,
पीत पात, रूखे-सूखे तरु, नंगी डालें,

फूल, कली, मधु, गंध न, मधुकर दूर सिधारे,
बुलबुल के दिल में पर जब तक याद चमन की
यह पतझर तूफ़ान मदिर मधुवात मलय है।
        यदि मन अजित-अजेय, पराजय भी फिर जय है।

शब्द न भाषा भाव, न छन्द बन्द का बन्धन,
काव्य - कल्पना नहीं, कला का नहीं प्रदर्शन,
ज्ञात नहीं स्वय-ताल, ज्ञान भी नहीं राग का,
नहीं साधना, नहीं शास्त्र का अध्ययन मन्थन,
पर जब तक तुम मेरे गीतों को गाती हो
मेरे गीतों का प्रति - प्रति अक्षर अक्षय है।
        यदि मन अजित-अजेय, पराजय भी फिर जय है।

यह कैसा आश्चर्य कि युग-व्यापी जीवन का
थामे कर में सूत्र इशारा केवल मन का?
इतनी बड़ी धरा पर संचालित ॠतु से बस?
एक क्षुद्र - सा फूल रूप सारे उपवन का?
एक बूँद ही तो समुद्र की गहराई है,
एक सत्य ही तो सौ सपनों का आश्रय है।
        यदि मन अजित-अजेय, पराजय भी फिर जय है।

अहं की कारा

मेरे ताले की कुंजी कहीं खो गई है,
और ज़िन्दगी एक छोटे से कमरे में बन्द हो गई है।
वैसे यहाँ कोई मुझे कष्ट नहीं,
सभी आराम है,
रेशमी रज़ाई है,
गुदगुदा बिस्तर है,
साफ़-सुथरा फर्श है,
लिपी-पुती पक्की दीवारें है (चोरों का डर नहीं)
खिड़कियाँ हैं,
रोशनदान हैं,
हवा भी आती है,
कभी-कभी बाहर की धूप झाँक जाती है,
लेकिन एक बात है:
और वह यह कि मेरी बहुत बड़ी दुनिया अब बहुत छोटी हो गई,
क्योंकि मेरे ताले की कुंजी खो गई है।

दुनिया वह-
जहाँ भौंरे गाते हैं,
पत्ते गुनगुनाते हैं,
फूल मुसकराते हैं,
सुबह-शाम सूरज-चाँद आरती सजाते हैं,

दुनिया वह-
जहाँ हवा पेड़ों पै झूला झूल जाती है,
बादल की आँख नदी बनकर डबडबाती है,
केसर की क्यारी झूम तालियाँ बजाती है,

दुनिया वह-
जहाँ अन्नदाता के बैल हैं,

हल हैं,
खुरपी है, कुदाली है,
श्रम की दीवाली है।

दुनिया वह-
जहाँ ढीठ कोयल की कूक है,
पपीहे की हूक है,
सबके दिलों में एक प्यार की भूख है,
कजली की कसक जहाँ लगती है,
बिरहा की बहक जहाँ लगती है,
साँसों के सरगम में बाँसुरी-सी बजती है।

दुनिया वह-
जहाँ हवा-पानी की गुन-गुन है,
कलियों की कुनमुन है,
माटी की रुनझुन है,
बगिया के राधा कन्हाई की अनबन है।

दुनिया वह-
जहाँ भीड़-मेला है,
मोटर-बसों का सैलाब-जैसा रेला है,
बम-बंदूकों की चर्चा है,
ख़बरों-अख़बारों की बरखा है,
डलेस की युद्ध-नीति, नेहरू की शांति-नीति, गांधी का चरखा है,
यह सारी दुनिया, जो सचमुच ही दुनिया है,
आज मेरे लिए सिर्फ़, मेरे दरवाज़े ही कफ़न ओढ़ सो गई है।
क्योंकि मेरे ताले की कुंजी कहीं खो गई है।

किसको बुलाऊँ मैं?
भीतर से बंद हूँ, बाहर से ताला यह कैसे खुलवाऊँ मैं?
अपने हाथ गढ़ी हुई कारा यह कैसे जलाऊँ मैं?
तो फिर क्या ऐसे ही बंद मुझे रहना है?
अपना अकेलापन पड़े-पड़े सहना है,
अधजली सिगरेट-सा इसी तरह दहना है?
नहीं, नहीं... यह सब असम्भव है,
बाहर जो हलचल है, उसके लिए सभी कुछ सम्भव है?
सूरज निकलने की देर है,

अबेर है,
नहीं अँधेर है,
भीड़ जब आएगी,
कुंडी खटखटाएगी,
द्वार बंद पाएगी तो रोष में आएगी!
तब यह प्राचीर एक छिन में टूट जाएगी।
फिर एक ताला नहीं,
लाख-लाख ताले खुल जाएँगे,
तन-मन के किवाड़ जिनमें कालिख लगी है ख़ुद-ब-ख़ुद धुल जाएँगे,
जनम-जनम के छुटे मीत मिल जाएँगे,
और यह कमरा तब आँगन बन जाएगा,
होगी दीवार न तो आँगन यह त्रिभुवन बन जाएगा।
फिर न किसी ताले या कुंजी की खोज होगी,
होली दीवाली रोज़-रोज़ होगी,
यानी पूर्णमासी यह दौज होगी।
तब न कोई छोटा और बड़ा होगा,
तब न कोई बैठा और खड़ा होगा,
दीपक की बाहों में सूरज जड़ा होगा।
आज मगर ताले की कुंजी कहीं खो गई है

इसीलिए सपनों की रात मेरा आँचल भिगो गई है,
और चार ईंटों में साँस दफ़न हो गई है,
क्योंकि मेरे ताले की कुंजी कहीं खो गई है।

तब मानव कवि बन जाता है!

तब मानव कवि बन जाता है!

जब उसको संसार रुलाता,
वह अपनों के समीप जाता,
पर जब वे भी ठुकरा देते
वह निज मन के सम्मुख आता,
पर उसकी दुर्बलता पर जब मन भी उसका मुसकाता है!
तब मानव कवि बन जाता है!

ओ रे मन!

ओ रे! मन रूप - रसिक!
ओरे मन कामी,
मुझ से भरी जाय नहीं
अब तेरी हामी।

घरनी जो मेरी है
शब्दहीन वाणी
हेम-वरण, रस ग्वालिनि
राधा जग - रानी
करता फिरे उसकी तू दर-दर बदनामी
ओ रे! मन रूप रसिक।।

दिया तुझे जिसने
आकार, रूप रंग,
तानी गगन बीच
बिना डोर के पतंग।
उसे छोड़, सब की तू करे है सलामी।
ओ रे! मन रूप रसिक।।

रस्सी को सर्प करे
मृग - जल को धार
ताने बिना बाना बुने
धागे बिना हार
नाम से करोड़ीमल काम से छदामी
ओ रे! मन रूप रसिक!

जो मैं नहीं हूँ वो
मुझे तू दिखाये,
नाम तो मेरा बिके

यश तू कमाये
गुरु को बेच गया चेला इक हरामी।
ओ रे! मन रूप - रसिक।।

जीवन एक कुआँ है

जीवन एक कुआँ है—
अथाह-अगम
सब के लिए एक-सा वृत्ताकार
कृपण नहीं, स्वभावतः उदार
जो भी पास जाता है
सहज ही
तृप्ति शांति संतोष पाता है।
मगर छिद्र होते हैं जिसके पात्र में
रस्सी-डोल रखने के बाद भी
हर प्रयास करने के बाद भी
वह यहाँ प्यासा का प्यासा रह जाता है।
मेरे मन तूने भी
बार-बार
बड़ी-बड़ी रस्सियाँ बटीं
रोज़-रोज़ कुएँ पर गया
तरह-तरह घट को चमकाया
पानी में डुबाया-उतराया
मगर तू सदा प्यासा गया,
प्यासा ही आया।
और दोष तूने दिया
कभी तो कुएँ को
कभी पानी को,
कभी सब को।
मगर कभी जाँचा नहीं घट को
परखा नहीं घट की तली को
चीन्हा नहीं उन छिद्रों को
जो एक नहीं, अनेक थे।
अरे मूढ़-अब तो देख

ख़ुद को परेख।
यहाँ—
हर गाँव,
हर गली
हर घर हर नगर
कुआँ है, तालाब है, सागर है
वहीं यहाँ प्यास है
छिद्र जिसके पात्र में
भीतर या बाहर है।

सबसे ग़रीब इन्सान

(एक प्राचीन बोध-कथा)

एक था बियाबान
बियाबान में था एक क़ब्रिस्तान,
क़ब्रिस्तान में रहता था एक मलंग,
पागलों से थे उसके ढंग।
क़ब्रिस्तान में गड़ा था एक पत्थर
जिस पर अंकित थे शब्दाक्षर।
"यहाँ एक अनमोल ख़ज़ाना है गड़ा
सदियों से जो सड़ रहा है पड़ा-पड़ा
कोई भी आये
क़ब्रें खोदे
"और ख़ज़ाना ले जाये।"
जो भी यात्री उधर से गुज़रता
पागल सब को शिलालेख की संकेत करता
कहता-आओ
क़ब्र खोदो और ख़ज़ाना ले जाओ।"
मगर ग़रीब से ग़रीब
भिखारी ने भी वो ख़जाना नहीं छुआ
सब उससे बचकर निकल जाते
जैसे वो हो कोई मौत का कुआँ
तभी निकला एक दिन
उधर से एक सम्राट
जो लूट कर ला रहा था
किसी अन्य राजा का राजपाट
अकूत धन उसके पास था
मगर उसका लोभ
विस्तार आकाश का था
पागल ने उसे भी वो शिलालेख पढ़वाया

उसे पढ़ कर सम्राट
ख़ुशी से फूला नहीं समाया
और फिर बिना कुछ सोचे-समझे
उसने पूरा का पूरा क़ब्रिस्तान ख़ुदवाया
मगर हाय री तक़दीर
मुर्दों की हड्डियों के सिवा
उसके हाथ कुछ न आया।
सम्राट जब अपनी
विफ़लता पर झुँझला रहा था
तब पागल यह कहकर
मुस्करा रहा था—
"दुनिया का सबसे ग़रीब इन्सान
देखने की इच्छा बरसों से थी
मेने मन में
सो हे सम्राट
तूझे देखकर
पूरी हुई इस निर्जन में
जिसे नसीब न था
एक भी दाना,
ऐसे ग़रीब तक ने
छुआ नहीं ये ख़जाना
उसी के पाने को
होते हुए भी सब ठाठ-बाट
रखते हुए भी सब राजपाट
तूने मुर्दों की कब्रों तक को
किया तबाह
तेरे लाभ की है कोई इन्तिहा,
तुझ से बढ़कर और
कौन ग़रीब होगा ओ शहंशाह।

विद्रोही

मैं विद्रोही हूँ जग में विद्रोह कराने आया हूँ,
क्रान्ति - क्रान्ति का सरल सुनहरा राग सुनाने आया हूँ।

मुझको गिरि सागर ने रोका, रोका चट्टानों ने,
काँटों झंखाड़ों ने रोका, रोका तूफ़ानों ने,
फाँसी के तख्ते ने रोका, रोका वीरानों ने,
बरसती आँखों ने रोका, रोका प्यासे अरमानों ने,
रोक सका है कौन उसे जिसने बस जलना ही सीखा,
बुझा सका है कौन उसे जिसने बस चलना ही सीखा,
मिटा सका है कौन उसे जिसने बस जीना ही सीखा,
विष भी तो मधु बना उसे जिसने बस पीना ही सीखा,
आज विश्व को यही अमर मैं पाठ पढ़ाने आया हूँ।
मैं विद्रोही हूँ, जग में विद्रोह कराने आया हूँ।

सावधान ओ! सावधान लो, अब मैं क़दम बढ़ाता हूँ,
सावधान! सूखी साँसों से मैं तूफ़ान उठाता हूँ,
सावधान! लो सात सागरों में मैं आग लगाता हूँ,
एक बार मरकर ही मैं युग-युग तक जीने आता हूँ,
हुंकारें सुन हिल जायेंगी भू, नभ की तसवीरें,
ताज हिलेंगे, राज हिलेंगे, तख़्तों की तक़दीरें,
हिल जायेंगे मंदिर-मस्जिद पराधीन जंज़ीरें,
किन्तु रहेंगी अमिट लहू से मेरे बनी लकीरें,
आज विश्व के वैभव की मैं ईंट हिलाने आया हूँ।
मैं विद्रोही हूँ, जग में विद्रोह कराने आया हूँ।

चाँदी का व्यापार यहाँ पर प्राणों का व्यापार नहीं
है संसार अरे धनियों का दुखियों का संसार नहीं,
यहाँ जवानी के दिल पर अरमान मिटाये जाते हैं,
और आँख के पानी से इन्सान बनाये जाते हैं,

यहाँ महल के लिए जीर्ण झोंपड़ी जलाई जाती है,
और ख़ून से दीनों के मधु-प्यास बुझाई जाती है,
यहाँ कँटीले झाड़ों में ज़िन्दगी बसाई जाती है,
कागज़ के टुकड़ों पर अस्मत यहाँ लुटाई जाती है,
हाथों से मुँह ढाँप बैठकर यहाँ जवानी रोती है,
केवल पेट और रोटी की यहाँ कहानी होती है,
अधिकारों के हेतु यहाँ नित-नित कुर्बानी होती है,
देख जिसे मानवता जग की पानी-पानी होती है,
यहाँ विकसने से पहले ही फूल अरे! मुरझाते हैं,
और स्नेह पड़ने से पहले ही दीपक बुझ जाते हैं,
दो दानों पर यहाँ गोद के लाल लुटाये जाते हैं,
पर कुत्तों को षटरस व्यंजन यहाँ खिलाये जाते हैं,
यहाँ कली के अंचल में ज़हरीली नागिन सोती है,
मधुबाला के दामन में बस विष की ज्वाला होती है,
पत्थर के काले-पीले टुकड़े भगवान यहाँ बनते,
फूट-फूटकर दिल के छाले ही बस गान यहाँ बनते,
नर्क बना है विश्व आज मैं स्वर्ग बनाने आया हूँ।
मैं विद्रोही हूँ, जग में विद्रोह कराने आया हूँ।

परवशता की हथकड़ियों से जकड़ी हैं जिनकी बाँहें,
और चीथड़ों में ही ठिठुरी जिनकी सब कोमल चाहें,
पाषाणों से ही लड़-लड़कर टूट गई जिनकी आहें,
सुनी कपोलों ने जिनके बस आँसू की ही अफवाहें,
केवल मौत - मौत ही जिनसे हरदम करती है बातें,
जिनसे लड़ने को उद्दत रहती हैं कुत्तों की पातें,
काली पड़ती जाती हैं जिनकी आहों से ही रातें,
जिन पर नयी - नयी करती है रोटी ही नित-नित घातें,
आज उन्हीं के हाथों में मैं मौत बसाने आया हूँ।
मैं विद्रोही हूँ, जग में विद्रोह कराने आया हूँ।

उधर बह रही है मेहनतकश मानव के शोणित की धार,
जिसको पीकर उठती जाती वैभव की गोरी दीवार,
उधर युगों से गूँज रहा है मौन रुदन औ’ हाहाकार,
किन्तु इधर चल रही रूप के नयनों की तिरछी तलवार,
दो पैसों पर वहाँ लुट रही बहनों की अस्मत देखो!
एक इकन्नी पर बिकती उस बाला की क़िस्मत देखो!

खाने को तन में न मांस भी मालिक की रहमत देखो!
और इधर प्याली के मद में यौवन की जन्नत देखो!
देखो, देखो, आँख खोलकर तुम्हें दिखाने आया हूँ।
मैं विद्रोही हूँ, जग में विद्रोह कराने आया हूँ।

तुम वह हो बस सत्य रही है जिनकी एक निशानी,
तुम वह हो भालों पर जिनकी बीती सदा जवानी,
तुमने पानी पर तैराये पत्थर कर-कर पानी,
तब बलिदान, त्याग ही तो बनते इतिहास कहानी,
भूल गये तुम भूल गये पर हरिश्चन्द्र को भूल गये,
गीता-रामायण को भूले, रामचन्द्र को भूल गये,
काँटों पर सोने वाले मेवाड़ सिंह को भूल गये,
फाँसी पर मुसकाने वाले भगत सिंह को भूल गये,
भूल गये जो कुछ तुमको वह याद कराने आया हूँ।
मैं विद्रोही हूँ, जग में विद्रोह कराने आया हूँ।

लुटेरों का समर्थन कर रहे हैं

अब उजालों को यहाँ बनवास ही लेना पड़ेगा
सूर्य के बेटे अँधेरों का समर्थन कर रहे हैं।

एक भी क़न्दील जलती है कहीं पर भी न कोई
जुगनुओं की रोशनी में काम चलता है शहर का
इस क़दर अमरित सरे बाज़ार अपमानित हुआ है—
हो गया है भाव ऊँचा सब दुकानों पर ज़हर का
लग रहा है अब परीक्षित यज्ञ फिर कोई करेगा
रस-विधायक स्वर, सपेरों का समर्थन कर रहे हैं।

था सुना हमने कि जिनके खाँसने भर से कभी
जागती थी किस्मतें सोये ज़मानों की
और जिनके क्रोध की चिनगारियाँ छूकर
टूट जाती थी सलाख़ें जेलख़ानों की
आज वो ही लोग पद के लोभ-लालच में
राष्ट्र के निर्मम लुटेरों का समर्थन कर रहे हैं।
अब उजालों को यहाँ बनवास ही लेना पड़ेगा।

जेलख़ानों की तरफ़ ही मुड़ गये हैं रास्ते सब
हर किसी के शीश पर तलवार इक नंगी खड़ी है
एक क़ब्रिस्तान की मानिन्द है खामोश बस्ती
उल्लुओं की ही महज़ आवाज़ पेड़ों पर जड़ी है
नीड़ का निर्माण करते थे कि कोयल के लिए जो
चील-गिद्धों के बसेरों का समर्थन कर रहे हैं।
अब उजालों को यहाँ बनवास ही लेना पड़ेगा।

जोड़ते थे जो सभी बिछुड़े दिलों को
पाटते थे जो सभी ही खाईयाँ
ईद होली के मिलन त्यौहार पर

जो बजाते थे मधुर शहनाईयाँ
आज वो ही लोग लेकर नाम मज़हब का
बांटने वाली मुंडेरों का समर्थन कर रहे हैं-
अब उजालों को यहाँ बनवास ही लेना पड़ेगा।

मरते हुए देश को बचाओ साथियों!

खारा कहीं गंगा का किनारा हो न जाय
नष्ट-भ्रष्ट बाग़ ये हमारा हो न जाय,
शोला जो बुझा है वो अँगारा हो न जाय
टुकड़े-टुकड़े देश ये दुबारा हो न जाए
आग जो लगी है वो बुझाओ साथियों।
मरते हुए देश को बचाओ साथियों।।

पैसे के लिए भवन जो बेच रहे हैं
बंगले के लिए चमन जो बेच रहे हैं
वोटों के लिए वतन जो बेच रहे हैं
गांधी-नेहरू का कफ़न जो बेच रहे हैं
उनको ज़रा आइना दिखाओ साथियों!
मरते हुए देश को बचाओ साथियों!!

देश किसी एक की जागीर नहीं है।
किसी एक कड़ी की ज़ंजीर नहीं है,
किसी एक घर की ये तस्वीर नहीं है।
किसी एक बेटे की तक़दीर नहीं है।
गद्दी से ग़द्दारों को हटाओ साथियों।
मरते हुए देश को बचाओ साथियों।।

देखो तो अँधेरा ही अँधेरा है यहाँ
दूर - दूर तक नहीं सवेरा है यहाँ
डाल - डाल कउओं का बसेरा है यहाँ
नेता ही तो देश का लुटेरा है यहाँ
सोई हुई दिल्ली को जगाओ साथियों।
मरते हए देश को बचाओ साथियों।।

भ्रष्टाचार की घिरी वो काली रात है

चोरी और डकैती आये दिन की बात है
चाकू और तमंचा हर किसी के हाथ है
लोकतंत्र क्या है भेड़ों की बरात है
फिर किसी शहीद को बुलाओ साथियों।
मरते हुए देश को बचाओ साथियों।।

हांडी में ग़रीब की न मिर्ची-नून है
फ़ाक़ा ही रे फ़ाक़ा यहाँ दोनों जून है,
महँगाई को इस कदर चढ़ा जुनून है
मिट्टी तो है महँगी और सस्ता ख़ून है
संविधान दूसरा बनाओ साथियों।
मरते हुए देश को बचाओ साथियों।।

आज की रात

आज की रात बड़ी शोख़, बड़ी नटखट है
आज तो तेरे बिना नींद नहीं आयेगी,
आज तो तेरे ही आने का यहाँ मौसम है,
आज तबीयत न ख़यालों से बहल पाएगी!

देख! यह छत पै उतर आई है सावन की घटा,
खेल खिड़की से रही आँख-मिचौनी बिजली,
द्वार हाथों में लिये बाँसुरी बैठी है बहार
और गाती है कहीं कोई कुयलिया कजली!

'पीऊ' पपीहे की, यह पुरवाई, यह बादल की गरज
ऐसे नस-नस में तेरी चाह जगा जाती है
जैसे पिंजरे में छटपटाते हुए पंछी को
अपनी आज़ाद उड़ानों की याद आती है!

यह दहकते हुए जुगनू-यह दिये आवारा
इस तरह रोते हुए नीम पै जल उठते हैं
जैसे बरसों से बुझी सूनी पड़ी आँखों में
ढीठ बचपन के कभी स्वप्न मचल उठते हैं!

और रिमझिम यह गुनहगार, यह पानी की फुहार
यूँ किये देती हैं गुमराह वियोगी मन को
ज्यूँ किसी फूल की गोदी में पड़ी ओस की बूँद
जूठा कर देती है भौरों के विकल चुम्बन को!

पार जमना के सिसकती हुई विरहा की तान
चीरती आती है जो धार की गहराई को
ऐसा लगता है महकती हुई साँसों ने तेरी
छू दिया है किसी सोई शहनाई को!

और भीनी-सी यह चम्पा की नशीली ख़ुशबू
आ रही है कि जो छन-छन के घनी डालों से,
जान पड़ता है किसी ढीठ झकोरे से लिपट
खेल आई है तेरे उलझे हुए बालों से!

आजा अब तो आ जाओ कँवल-पात-चरन, चन्द्र-बदन
सांस हर मेरी अकेली है, दुकेली कर दे!
सूने सपनों के गले डाल दे, गोरी बाँहें
सर्द माथे पै ज़रा गर्म हथेली धर दे!

पर ठहर, वे जो वहाँ लेटे है फुटपाथों पर
सर पै पानी की हरेक बूंद को लेने के लिये,
उगते सूरज की नयी आरती करने के लिये
और लेखों को नयी सुर्खियाँ देने के लिये!

और वह झोंपड़ी छत जिसकी स्वयं है आकाश
पास जिसके कि ख़ुशी आते शर्म खाती है,
गीले आँचल ही सुखाते जहाँ ढलती है धूप
छाते छप्पर ही जहाँ ज़िन्दगी सो जाती है!

पहले इन सबके लिये एक इमारत गढ़ लूँ
फिर तेरी साँवली अलकों के सपन देखूँगा,
पहले हर दीप के सर पर कोई साया कर दूँ
फिर तेरे भाल पै चन्दा की किरन देखूँगा!

पाकिस्तान के नाम

जा चुका पतझार, ऋतुपति आ गया दिशि-दिशि मगन है,
एशिया में फूटती फिर से नई कोंपल किरन है,
क्या कली चटकी नुमायश लग गई सारे चमन में
यूँ हँसी है धूल जैसे बिछ गई चाँदी भुवन में,

लहलहाते खेत, हर बाली सुहागिन बन गई है
और पटियाँ पार कर चौपाल फिर बन-ठन गई है
झूमते हैं कुँज, मेंहदी रच रही हर एक डाली,
बौर क्या फूला कि सारे बाग़ ने होली मना ली!

महमहाते पात, भौंरों पर नशा सा छा गया है,
वे खिलें है फूल धरती का बदन उजला गया है
कूकती कोयल बजाती बाँसूरी यों जंगलों में
ज्यों कि बचपन बोल उट्ठे उम्र के सूने पलों में।

गंध बोझिल वायु ऐसे चल रही है डगमगाती
जा रही हो ज्यों कि पनिहारिन गगरिया छलछलाती
इस तरह से धूप से पिटकर अँधेरा नत हुआ है
जिस तरह से 'मिस्त्र' में इंग्लैण्ड बेइज्ज़त हुआ है

और पनघट पर किरन यूँ ज्योति का घट भर रही है,
जिस तरह दिल्ली कि दुनिया में सबेरा कर रही है
यह सुबह है यह समाँ है, यह समय है, यह घड़ी है,
एक बदली किन्तु फिर भी आँख में मेरी खड़ी है।

क्या न जाने हो गया है जो नज़र इस तौर नम है
क्यों न जाने मैं दुःखी हूँ क्यों न जाने दर्द कम है?
कुछ नहीं मालूम केवल बात इतनी ही पता है
मर रहा है प्यार मज़हब से हुई ऐसी ख़ता है!

प्यार जिसको छोड़ दुनिया में कहीं भी दिन नहीं है
वह मरे औ शायरी रोये न, यह मुमकिन नहीं है।
मैं न लिखता ख़त तुझे लेकिन रहा जाता नहीं है
दर्द ऐसा है सहूँ भी तो सहा जाता नहीं है।

शोर यह नफ़रत भरा जिसमें कि डूबी है कराँची,
सुन उसे शरमा रहे हैं रे कुतुबमीनार साँची,
उग रही जो सिन्धु तट पर फसल वह बारूद वाली,
देख उसको हो रही है ताज की तस्वीर काली!

बम्ब जिसमें बन्द है सिन्दूर हर क्वाँरी दुल्हन का
हो रहा है ज़र्द उससे हुस्न मरियम की बहन का
नग्न संगीनें टँगी जिन पर कि बेपरदा जवानी
क़ब्र अकबर की फटी है याद कर उनकी कहानी।

गड़गड़ाहट टैंक की जो बादलों की हमसफ़र है
नाद उसका सुन जुमा मस्जिद किये नीची नज़र है
और तोपें धज्जियाँ जिनसे ज़मीनें हो चुकी हैं
गन मशीनें छाँह जिनकी बस्तियाँ तक सो चुकी हैं।

एटमी हथियार है हीरोशिमा जिनकी गवाही
गोलियाँ परिचित कि जिनसे ख़ूब हर आज़ाद स्याही
किस लिये तू बता इनकी सिफ़ारिश कर रहा है
जब कि सारा एशिया खलिहान अपने भर रहा है।

पट रहीं जब खाइयाँ, जब कट रहीं साँकल किवाड़े
किस लिये तब तू बनाता है हिमालय में दरारें?
आज तो सीमेन्ट की ही है ज़रूरत बस समय को
रे नहीं नफ़रत, मुहब्बत चाहिये टूटे हृदय को।

क्या कहा? बस कुछ हदों के हेतु यह रस्साकशी है
इस लिये ही बस हुई दुश्मन तुझे सबकी ख़ुशी है
गर ज़मीनें चाहिये तो तोप के मुँह बन्द कर दे
और हर वीरान गमले में ख़ुशी के फूल भर दे।

फेंक दे बन्दूक हाथों में उठा वह बीन तारा
जो अगर छिड़ जाय, 'दीपक' गा उठे संसार सारा
मोड़ दे रूख इन जहाज़ों का उधर आये जिधर से,

चाल ऐसी चल कि ख़ुद मंज़िल करे शादी सफ़र से।

जोत ऐसे खेत अँखुआने लगे हर एक घाटी
वह सिंचाई कर कि सोने की फ़सल बन जाय माटी
वे जला दीवे कि रातें रोशनी का खेल खेलें
यूँ दुआ कर बाग़ को आकर बहारें गोद ले लें।

वह कहानी बन कि तेरी याद हर इतिहास रक्खे
आदमीयत हो न फिर बदहाल ऐसे ढाल सिक्के
और दिल का आईना यूँ प्यार से उजला बना ले
मुस्कराहट का हमारी तू वहाँ बैठा मज़ा ले।

बात तो तब है कि जब अपने हृदय ऐसे मिले हों
घर हमारा जग उठे जब दीप घर तेरे जले हों
और तेरे दर्द को मेरी ख़ुशी यूँ दे सहारा
आँख तेरी हो मगर उससे बहे आँसू हमारा।

दो हुए तो क्या मगर हम एक ही घर के सेहन हैं
एक ही लौ के दिये हैं, एक ही दिन की किरन हैं
श्लोक के सँग आयतें पढ़ती हमारी तख़्तियाँ हैं
और होली ईद आपस में अभिन्न सहेलियाँ हैं।

मीर की ग़जलें उसी अन्दाज़ से हम चूमते हैं
जिस तरह से सूर के पद गुनगुनाकर झूमते हैं
मस्ज़िदों से प्यार उतना ही हृदय को है हमारे
हैं हमें जितने कि प्यारे मन्दिरो-मठ, गुरुद्वारे।

फ़र्क़ हम पाते नहीं हैं कुछ अज़ानों कीर्तन में
क्योंकि जो कहती नमाज़ें है वही हरि के भजन में
ज्यों जलाकर दीप धोते हम समाधी का घिरा तम
है चढ़ाते फूल वैसे ही मज़ारों पर यहाँ हम।

हम नहीं हिन्दू-मुसलमाँ, हम नहीं शेख़ो-बिरहमन
हम नहीं काज़ी-पुरोहित, हम नहीं रामू-रहीमन
भेद से आगे खड़े हम, फ़र्क़ से अनजान हैं हम
प्यार है मज़हब हमारा और बस इन्सान हैं हम!

राह काबे की, कि काशी की, कि हो मक्का-मदीना

हम सभी की धूल-कंकड़ को समझते हैं नगीना
‘ताजमहली नूर’ जिसको देख सुन्दरता थकी है
शायरी उस पर हमारी रोज़ जा जाकर बिकी है।

सीकरी जिसमें कि अब खण्डहर बसेरा ले रहा है,
आज तक उस पर हमारा प्यार पहरा दे रहा है
याद आता है अभी भी वह अठारह सौ सतावन
जब जफ़र के साथ निकले थे बुलाने हम गये दिन

और घायल हो गये थे जब जवाँ सपने हमारे
तुम कफ़न लेकर बढ़े थे और हम लेकर अँगारे।
कौन है त्योहार जो हमने मनाया हो न मिलकर
साथ ही सोकर जगे हम, साथ ही हम को मिले पर।

हमनज़र हम, हमउमर हम, हमसफ़र, हमराह-राही
क्यों बनी है बीच फिर दीवार लन्दन की सियाही?
दोस्त मेरे देख यह स्याही वही है ख़ून वाली
चाट ली थी सब की ज़ीनत महल की जिसने उजाली।

है घृणा अंधी, न सहती रोशनी उसकी नज़र है
वह न यह भी जानती मस्जिद किधर-मन्दिर किधर है?
वह बढ़ी यदि तो दुबारा कारवां वीरान होगा
हम भले हों, किन्तु धरती पर नहीं इन्सान होगा।

कानपुर के नाम

कानपुर! आह! आज तेरी याद फिर आई
स्याह कुछ और मेरी रात हुई जाती है,
आँख पहले भी यह रोई थी बहुत तेरे लिए
अब तो लगता है कि बरसात हुई जाती है।

तू क्या रूठा मेरे चेहरे का रंग रूठ गया
तू क्या छूटा मेरे दिल ने ही मुझे छोड़ दिया,
इस तरह ग़म में है बदली हुई हर एक ख़ुशी
जैसे मंडप में ही दुलहिन ने हो दम तोड़ दिया।

प्यार करके भी मुझे भूल गया तू लेकिन
मैं तेरे प्यार का अहसान चुकाऊँ कैसे
जिसके सीने से लिपट आँख है रोई सौ बार
उसकी तस्वीर से आँसू ये छिपाऊँ कैसे।

आज भी तेरे बेनिशान किसी कोने में
मेरी गुमनाम उमीदों की बसी बस्ती है
आज भी तेरी किसी मिल के किसी फाटक पर
मेरी मजबूर गरीबी खड़ी तरसती है।

फर्श पर तेरे 'तिलक हाल' के अब भी जाकर
ठीक बचपन मेरे गीतों का खेल आता है
आज भी तेरे 'फूलबाग' की हर पत्ती पर
ओस बन-बनके मेरा दर्द बरस जाता है

करती टाइप किसी ऑफ़िस की किसी टेबल पर
आज भी बैठी कहीं होगी थकावट मेरी
खोई-खोई सी परेशान किसी उलझन में
किसी फ़ाइल पे झुकी होगी लिखावट मेरी।

कुरसवाँ की वह अँधेरी सी हवादार गली
मेरे गुँजन ने जहाँ पहली किरन देखी थी,
मेरी बदनाम जवानी के बुढ़ापे ने जहाँ
ज़िन्दगी भूख के शोलों में दफ़न देखी थी।

आज भी उसके ख़तावार छिलके आवारा
मेरे पैरों से लिपटने के लिए फिरते हैं
आज भी उसकी सिसकती हुई दीवारों से
टूटे सपने मेरे चूने की तरह झरते हैं।

और ऋषियों के नाम वाला वो नामी कॉलेज
प्यार करके भी न्याय जो न दे सका मुझको
मेरी बगिया की हवा जो तू उधर से गुज़रे
कुछ भी कहना न, बस सीने से लगाना उसको।

क्योंकि वह ज्ञान का इक तीर्थ है जिसके तट पर
खेलकर मेरी कलम आज सुहागिन है बनी
क्योंकि वह एक शिवाला है जिसकी देहरी पर
होके नतशीश मेरी अर्चना हुई है धनी।

आज भी उसके डेस्कों पे झुकी जमुहाती
मेरी ठिठुरी सी सुबह सुन रही होगी लेक्चर
आज भी उसके रजिस्टर के किसी खाने को
मेरे गुमनाम या सरनाम की कुछ होगी ख़बर।

बात यह सिर्फ़ किन्तु जानती है 'मेस्टन रोड़'
ट्यूब कितने कि मेरी साइकिल ने बदले हैं
और 'चित्रा' से जो चाहो तो पूछ लेना तुम
मेरी तस्वीर में किस-किस के रंग धुँधले है।

गीत में किसके लिए लिखता हूँ यह राज़ तुम्हें
डाकिया नेहरू नगर का ही बता सकता है
परदा जो मेरे आँसुओं को ढके रहता है
वह तो बस कोई सितमगर ही उठा सकता है।

और वह शाम, आह मेरी हार जीत की शाम
आँख से आँख मिलाके जो रह गई थी खड़ी,
आज भी दिल के आइने में आठ साल के बाद

वो ही सूरत हाँ उसी नाज़ो-अदा से है जड़ी।

शोख मुस्कान वही और वही ढीठ नज़र
साथ साँसों के यहाँ तक रे चली आई है
तीन सौ मील की दूरी भी कोई दूरी है
प्रेम की गाँठ तो मरके भी न खुल पाई है।

याद आती है बहुत छाँव वह इमली वाली
छाँह जिसकी कि दोबारा न फिर हम घूम सके
आज तक भूल न पाया वह चाँद पूनम का
चूमने को जिसे दौड़े न मगर चूम सके।

आह वह लाल हथेली वह तुनकती मेंहदी
अब भी सपनों के बियाबाँ में महक जाती है
अब भी रातों के स्याह-सुन्न से सन्नाटे में
एक है आग जो बुझ-बुझ के दहक जाती है।

किसकी अलकों की नरम छाँह में जा सो जाऊँ
अब वे रातें न रहीं, अब वे बिछौने न रहे,
किसकी तस्वीर से रोता हुआ दिल बहलाऊँ
अब वह बचपन न रहा अब वह खिलौने न रहे।

कानपुर आज जो देखे तू अपने बेटे को
अपने नीरज की जगह लाश उसकी पायेगा
सस्ता ख़ुद इतना यहाँ मैंने ख़ुद को बेचा है
मुझको मुफ़लिस भी ख़रीदे तो सहम जायेगा

कानपुर तूने मुझे इतनी उमर तो दे दी
किन्तु रहने को तीन गज ज़मीन दे न सका,
पोंछ लूँ जिससे मैं अपने ये सुलगते आँसू
मेरे गीतों को एक आस्तीन दे न सका।

तेरे बाज़ार में बिकता भी तो मैं ख़ुश होता
बिकके इस गाँव मगर चैन न पा सकता हूँ,
सर उठाकर के इजाज़त जो मिले चलने की
ये शहर छोड़के मैं नर्क में जा सकता हूँ

साल भर बाद बुलाया है तूने आज मुझे

चाहे कुछ भी तू कहे, यूँ न मैं आ पाऊँगा
पालकी कवि की उठाना तुझे जब आ जाये
मुझको लिखना मैं तुझे दौड़ के मिल जाऊँगा।

और तब तक के लिए अपने कारखानों को,
खूब समझा दे कि उगले न ज़हर धरती पर
यूँ ही पीती न रहेगी मेरी धरती ये धुआँ
यू ही रोती न रहेगी नये भारत की नज़र!

गीत

प्यार करके जो निभाना ही नहीं था तुझको
किस लिये तू मेरे सपनों के निकट आई थी
किस लिये होठ मेरे होठ से गरमाये थे?
किस लिये आँख मेरी आँख से उलझाई थी?

मैं तो समझा था तेरी श्याम अलक में गुँथकर,
मैं किसी स्वर्ग की बगिया में पहुँच जाऊँगा,
और काजल में तेरी आँख के घुलकर मिलकर
मोती सब मानसरोवर के उठा लाऊँगा!

ज्ञात यह किन्तु नहीं था कि प्यार तेरा भी
रुपहले चन्द ठीकरों का ख़रीदार ही है
कैद है तेरी कलाई भी किसी कँगन में
तू भी सोने की चमकती हुई झंकार ही है!

तू जो कहती थी कि सूरज के चले जाने पर
जैसे फूलों की हँसी सूख के झर जाती है
जैसे आँधी के थपेड़े से मोमबत्ती की
काँपती लौ न किसी तौर भी जल पाती है!

वैसे ही तेरी जवानी की महकती चादर
मेरी बाहों की जुदाई नहीं सह सकती है
तू तो रह ले भी किसी भाँति, मगर साँस तेरी
मेरे ग़म में न किसी हाल में रह सकती है!

और अब आज ही तू प्यार को बदनाम बना
अजनबी जाँघ पे सर रख के कहीं लेटी है
और बैठा हूँ मैं हाथों में लिए कुछ तिनके
जबकि नस-नस मेरी रस्सी की तरह ऐंठी है।

मखमली नर्म बिछौने की गर्म बाहों में
आह चूड़ी तेरी रह-रह के खनकती होगी
मेरी जब रात अँधेरी है तेरी रातों में
टिकुली कोई तेरी माथे पे दमकती होगी!

मेरी बगिया में जब एक फूल नहीं पात नहीं
तूने तब ख़ुद को गुलाबों से सजाया होगा,
तुझको देखे बिना जब आँख यह पथराई है
तब किसी ने तुझे सीने से लगाया होगा!

उफ़ यह बेशर्म दर्द अब न सहा जाता है
जी में आता है कि इस दिल पे अँगारे धर दूँ
टिमटमाती हुई इस लौ पे सियाही मल दूँ
और इस साँस को मरघट के हवाले कर दूँ।

क्रोध आता है तेरी शोख अंखड़ियों पे मगर
दोष इस सबके लिये दूँ तो तूझे दूँ कैसे?
तेरी मर्ज़ी तो तेरी अपनी नहीं मर्ज़ी है
तू भी मजबूर है मजबूर है हम सब जैसे!

पूँजी-मसनद के सहारे पे टिकी दुनिया में
प्यार बिकता है गली-गाँव खिलौने की तरह
होता ईमान है नीलाम बर्तनों की तरह
और बिछा करती है औरत रे! बिछौनों की तरह!

तूने ख़ुद ही न मेरा साथ यहाँ छोड़ा है
तेरी मजबूर ग़रीबी ही मुझे छोड़ गई,
तू तो हटती न मेरे पथ से किसी क़ीमत पर
तेरी गुमनाम बेबसी ही तुझे मोड़ गई!

अपनी मर्ज़ी से नहीं दूसरों की मर्ज़ी से
बेचना तुझको पड़ा है जवान तन अपना
झूठी मुर्दार रूढ़ियों की हिफाज़त के लिए
मारना तुझको पड़ा है शहीद मन अपना!

आदमी इतना है असहाय और निरूपाय जहाँ
ऐसी दुनिया में उठो आग लगा ही डालो
ख़ून जो प्यार का बिखरा है गली-कूचों में

उसकी हर बूँद का सब दाम चुका ही डालो!

मुक्तक

(1)
क्या करेगा प्यार वो भगवान को
क्या करेगा प्यार वो ईमान को
जन्म लेकर गोद में इंसान की
प्यार कर पाया न जो इंसान को

(2)
ख़ुशी जिसने खोजी वो धन लेके लौटा
हँसी जिसने खोजी, चमन लेके लौटा
मगर प्यार को खोजने जो चला वो
न तन लेके लौटा न मन लेके लौटा।।

(3)
लेखनी अश्व की स्याही में डुबाकर लिक्खो
दर्द को प्यार से सिरहाने बिठाकर लिक्खो
ज़िन्दगी कमरो किताबों में नहीं मिलती है
धूप में जाओ पसीने में नहाकर लिक्खो।

(4)
फ़ौलाद की मूरत भी पिघल सकती है
पत्थर से भी रसधार निकल सकती है
इन्सान अगर अपनी पे आ जाए तो
कैसी भी हो तक़दीर बदल सकती है।।

(5)
नेताओं ने गांधी की कसम तक बेची
कवियों ने निराला की कलम तक बेची
मत पूछ कि इस दौर में क्या-क्या न बिका
इन्सानों ने आँखों की शरम तक बेची।।

(6)
कोई जाने नहीं वो किसकी है
वो न तेरे न मेरे बस की है
राजसत्ता तो एक वेश्या है
आज इसकी तो कल वो उसकी है।।

(7)
तू कवि है तो काव्य को बदनाम न कर
जो मन में गंदगी है उसे आम न कर
कविता तू जिसे कहता वो बेटी है तेरी
चौराहे पे लाकर उसे नीलाम न कर।।

(8)
सूखे हुए सब ज़ख्म चमन के महक गये
यूँ फूल खिले जैसे अँगारे दहक गये
भौंरे तो थे भौंरे हम उनका हाल क्या
ऐसी बहार आई कि माली बहक गये।।

(9)
दुखते हुए ज़ख्मों पे हवा कौन करे
इस हाल में जीने की दुआ कौन करे
बीमार है जब ख़ुद ही हक़ीमाने वतन
फिर तेरे मरीज़ों की दवा कौन करे।।

(10)
बादलों से सलाम लेता हूँ
वक़्त के हाथ थाम लेता हूँ
झूम उठता है सारा मयखाना
जब मैं हाथों में जाम लेता हूँ।।

(11)
जी हाँ, हम आग पीके जीते हैं
जख़्मेदिल आँसुओं से सीते हैं
हम गुनहगार, मगर वो क्या हैं
खून इन्सान का जो पीते हैं।।

(12)

चाह तन-मन को गुनहगार बना देती है
बाग़ के बाग़ को बीमार बना देती है
भूखे लोगों को देशभक्ति सिखाने वालों
भूख इन्सान को गद्दार बना देती है।।

(13)

सुख की दीवाली अंधेरे में सदा मनती है
कीचड़ों से ही कमल सारी ज़मीं चुनती है
पुण्य की बात ही केवल न किताबों में लिखो
कुछ गुनाहों से भी दुनिया हसीन बनती है।।

(14)

कर्ज़ रो-रो के भरा उम्र की सब किश्तों का
और सम्मान किया वक़्त के सब रिश्तों का
फिर भी कुछ मुझमें कमी है तो न गाली दो मुझे
आदमी टूटा हुआ ख़्वाब है फ़रिश्तों का।।

(15)

मौसम की नज़र मेहरबान होती है
रफ़्तारे वक़्त पर थकान होती है
उस रात में बन जाती है दुनिया कुछ और
जिस रात में कविता जवान होती है।।

(16)

क्या कहें यार हमें यारों ने क्या-क्या समझा
किसी ने क़तरा किसी ने हमें दरिया समझा
सब समझते रहे वैसा जिसे जैसा भाया,
किन्तु हम जो थे वही तो न ज़माना समझा।।

(17)

गो परीशां हूँ बहुत आपकी इस बस्ती में
फिर भी इस बाग़ से बाहर न निकल पाता हूँ
दुष्ट काँटों से मैं दामन जो बचाता हूँ तो
शोख़ फूलों की निगाहों से उलझ जाता हूँ।।

(18)

तुतलाके जब बच्चा कोई मुँह खोलता है

कानों में सभी के वो अमृत घोलता है
बच्चों का हृदय ही तो है ईश्वर का निवास
बच्चों की ज़ुबाँ से ही ख़ुदा बोलता है।।

(19)

हर स्वप्न है रो-रो के सुनाने के लिए
हर याद है घुल-घुल के घुलाने के लिए
जाती हुई डोली को न आवाज़ लगा,
इस गाँव में सब आये हैं जाने के लिए।।

(20)

कफ़न बढ़ा तो किसलिए नज़र तू डबडबा गई।
सिंगार क्यूँ सहम गया बहार क्यूँ लजा गई।
न जन्म कुछ न मृत्यु कुछ बस इतनी ही तो बात है
किसी की आँख खुल गई किसी को नींद आ गई।।

(21)

अब न वो दर्द न वो दिल न वो दीवाने रहे
अब न वो साज़ न वो सोज़ न वो गाने रहे
साकी तू अब भी यहाँ किसके लिए बैठा है
अब न वो जाम, न वो मय न वो पैमाने रहे।।

(22)

हर धर्म के आदेश को माना मैंने
दर्शन के हरेक सूत्र को छाना मैंने
जब जान लिया सब कुछ तो ऐ मेरे नीरज
मैं जानता कुछ भी न ये जाना मैंने।।

दोहे

1. आत्मा के सौंदर्य का, शब्द रूप है काव्य।
   मानव होना भाग्य है, कवि होना सौभाग्य।।
2. तन से भारी साँस है, इसे समझ लो ख़ूब।
   मुर्दा जल में तैरता, ज़िन्दा जाता डूब।।
3. जो आए ठहरे यहाँ, थे न यहाँ के लोग।
   सबका यहाँ प्रवास है, नदी नाव संजोग।।
4. सिर्फ़ बिछुड़ने के लिए है ये मेल मिलाप।
   एक मुसाफ़िर हम यहाँ, एक मुसाफ़िर आप।।
5. मित्रों हर पल को जियो अंतिम ही पल मान।
   अंतिम पल है कौन सा, कौन सका है जान।।
6. रूके नहीं कोई यहाँ, नामी हो कि अनाम।
   कोई जाये सुबह को, कोई जाये शाम।।
7. जहाँ मरण जिसका लिखा, वो बानक बन आय।
   मृत्यु कहीं जाए नहीं, व्यक्ति वहाँ ख़ुद जाय।।
8. दिखे नहीं फिर भी रहे, ख़ुशबू जैसे साथ।
   वैसे ही यादें तेरी, संग चलें दिन-रात।।
9. आज़ादी के बाद कुछ ऐसा हुआ विकास।
   हरियाली को दे दिया ऊसर ने वनवास।।
10. जब से भारत में बढ़ा अयोग्यता का वंश।
    कउए तो मोती चुगें, आँसू पीते हंस।।
11. राजनीति शतरंज है विजय यहाँ वो पाय।
    जब राजा फंसता दिखे पैदल दे मरवाय।।
12. राजनीति के खेल ये समझ सका है कौन।

बहरों को भी बँट रहे अब मोबाइल फ़ोन।।

13. करते हैं जो देशहित निज जीवन बलिदान।
उनसे ही जीवित रहा, अब तक हिन्दुस्तान।।

14. जिनको जाना था यहाँ पढ़ने को स्कूल।
जूतों पर पॉलिश करें वो भविष्य के फूल।।

15. नेताओं के पास हैं बस ये दो ही काम।
मन्दिर में काटें सुबह मदिरालय में शाम।।

16. जब से गंगा में पड़े नेताओं के पाँव।
गंगा मैली हो गई, हुए विषैले गाँव।।

17. भूखा पेट न जानता, क्या है धर्म-अधर्म।
बेच दे संतान तक, भूख न जाने शर्म।।

18. कविता और संगीत हैं भरे पेट के काम।
जब तक भूखा पेट है, सब कुछ लगे हराम।।

19. चाहे बसो पहाड़ पर या फूलों के गाँव।
माँ के आँचल से अधिक शीतल कहीं न छाँव।।

20. भक्तों में कोई नहीं बड़ा सूर से नाम।
उसने आँखों के बिना देख लिये घनश्याम।।

21. लोकतंत्र है बन गया लूटतंत्र अब यार।
जनता भ्रष्टाचार को कहती शिष्टाचार।।

22. नहीं बने गुणतंत्र रे जब तक ये गणतंत्र।
तब तक गणिकातंत्र ही होगा इसका मंत्र।।

23. थाने के ही पास था उस बस्ती का छोर।
लेकिन पहुँची पुलिस तब भाग गये जब चोर।।

24. दुनिया के बाज़ार में ऐसा हुआ छलाव।
घर लौटे हम बेचकर सोना मिट्टी भाव।।

25. स्नेह, शांति, सुख सदा ही करते वहाँ निवास।
आस्था जिस घर माँ बने, पिता बने विश्वास।।

26. अश्व इन्द्रियाँ, देह-रथ, बुद्धि सारथी जान।
मन लगाम है कस इसे यात्र हो आसान।।

27. आया जिस दिन आम पर पहला पहला बौर।
माँ से पूछे इक लली अब आगे क्या और।।

28. लगते हैं संगीत स्वर उसको ही अनमोल।
सुने नहीं जिसने कभी शिशु के तुतले बोल।।

कारवाँ गुज़र गया...

स्वप्न झरे फूल से
मीत चुभे शूल से
लुट गए सिंगार सभी बाग के बबूल से
और हम खड़े - खड़े बहार देखते रहे,
कारवाँ गुज़र गया, ग़ुबार देखते रहे!

(1)
नींद भी खुली न थी कि हाय धूप ढल गई
पाँव जब तलक उठे कि ज़िन्दगी फ़िसल गई
पात - पात झर गये कि शाख़ शाख़ जल गई
चाह तो निकल सकी न पर उमर निकल गई
गीत अश्क बन गए,
छन्द हो दफ़न गए,
साथ के सभी दिये धुआँ पहन-पहन गये
और हम झुके - झुके
मोड़ पर रुके - रुके
उम्र के चढ़ाव का उतार देखते रहे
कारवाँ गुज़र गया, ग़ुबार देखते रहे!

(2)
क्या शबाब था कि फूल-फूल प्यार कर उठा
क्या सुरुप था कि देख आइना सिहर उठा
इस तरफ़ ज़मीन और आसमाँ उधर उठा
थाम कर जिगर उठा कि जो मिला नज़र उठा,
एक दिन मगर यहाँ
ऐसी कुछ हवा चली
लुट गई कली-कली घुट गई गली-गली
और हम हो ब़ेखबर

देह की दुकान पर
साँस की शराब का ख़ुमार देखते रहे
कारवाँ गुज़र गया, ग़ुबार देखते रहे!

(3)

हाथ थे मिले कि ज़ुल्फ़ चाँद की सँवार दूँ
होंठ थे खुले कि हर बहार को पुकार दूँ
दर्द था दिया गया कि हर दुखी को प्यार दूँ
और साँस यूँ कि स्वर्ग भूमि पर उतार दूँ
हो सका न कुछ मगर
शाम बन गई सहर
वह उठी लगर कि ढह गए किले बिखर बिखर
और हम लुटे-लुटे
वक़्त से पिटे-पिटे
दाम गाँठ के गवाँ बाज़ार देखते रहे—
कारवाँ गुज़र गया, ग़ुहार देखते रहे!

(4)

माँग भर चली कि एक जब नई-नई किरन,
ढोलकें धुनक उठीं, ठुमक उठे चरन-चरन
शोर मच गया कि लो चली दुल्हन, चली दुल्हन
गाँव सब उमड़ पड़ा, बहक उठे नयन-नयन
पर तभी ज़हर भरी
गाज एक वह गिरी
पुँछ गया सिंदूर, तार-तार हुई चुनरी,
और हम अजान से
दूर के मकान से
पालकी लिए हुए कहार देखते रहे!
कारवाँ गुज़र गया, ग़ुबार देखते रहे!

(5)

एक रोज एक गेह चाँद जब नया उगा
नौबतें बजीं हुआ ढटोन और रतजगा
कुंडली बनीं कि जब मुहूर्त पुण्यमय लगा
इसलिए कि दे सके न मृत्यु जन्म को दगा
एक दिन न पर हुआ

उड़ गया पला शुआ
कर सके न कुछ शकुन कर सके न कुछ दुआ
और हम डरे-डरे
नीर नयन में भरे
ओढ़कर कफ़न पड़े मज़ार देखते रहे!
चाह थी न किंतु बार-बार देखते रहे!
कारवाँ गुज़र गया, ग़ुबार देखते रहे!